PART-1 (DELEGATES)

1

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. अभिमन्यु सिंह

प्रवक्ता, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

वाक्सूक्त वैदिक आत्मविवेक और अद्वैत का संक्षिप्त परिचय है। देवी की दिव्य उपस्थिति का परिचय ऋग्वेद 10.125.3 में मिलता है। 'राष्ट्री' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए सायण कहते हैं कि वह सम्पूर्ण संसार पर शासन करने वाली देवी है (सर्वस्य जगत ईश्वरी)। यह विश्लेषण वाक्–परिकल्पना को उत्कृष्ट आयाम देता है। इसे वेदोपबृंहण वाङ्मय के माध्यम से समझना उचित होगा। मार्कण्डेय पुराण के अंश दुर्गासप्तसती में देवी का ऐश्वर्य प्रचण्ड शक्ति के रूप में देखा गया है– *'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।* (श्रीदुर्गासप्तशती 10.4)

2

Empowerment of Women : A Vedic Insight

Dr. Akhilesh Kumar Shukla

Associate Prof., Sociology, Govt. P.G. College, Kotdwara (U.K.)

Woman has been known as Goddess in Indian society. She has been worshiped, praised, regarded, loved, cursed but never been ignored. As a daughter, wife, mother, daughter-in-law her role is multifunctional. Indian women enjoyed high respect in Vedic society. They formally participated in all social and domestic activities. Vedas tell us about many fortunate women who were fully satisfied with what they had. This paper is an attempt to trace the outlook of society towards women. How society would be benefited by Vedic outlook towards women. The women had been said the better half of her husband. In later Vedic a great emphasis was laid on her virtue. She followed her husband in his last journey not physically but through her deeds. So purity of women was important. In *Skand Purana* chastity was an important expectation from women she must pleasure her honour and maintain her chastity, failing which she goes to hell and her husband losses the heavenly bliss. In Vedas, we find many references of married and unmarried woman who get respect in society.

We get a vivid picture of marriage and types of marriage in Vedic and post Vedic literature. The purpose of marriage was: - Having many children especially sons, to perform rituals, sacrifices and worship, to enjoy the pleasure coming from conjugal life, Social acceptance and for help in economic field. In *Chandogyopanishad* the story of Satyakama Jabala reveals boldness of woman relating her sex life.

This story has a great significance, it shows those unmarried mothers were present in society and accepted by the society. Vedas give a great emphasis on women empowerment. Women could protect themselves. Woman are backbone of society but have described as weaker sex. The long years of suffering and discrimination have not demoralized their true self and spirit. They draw their strength from tradition and cultural values that our great civilization has. They are neither needed to worshiped nor condemned publically. They need protection, recognition and respect from society.

3

वैदिक चिन्तन एवं मूल्य : पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. अलका राय

असिस्टेंट प्रोफेसर, जीव विज्ञान, आर.एस.एम. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर (उ.प्र.)

'पर्यावरण' शब्द से सामान्य अभिप्राय भौतिक परिवेश लिया जाता है, जो जैव जगत को आवृत किए हुए है। पर्यावरण ही वह पक्ष है जिसने पृथ्वी को जीवित जगत् की गरिमा प्रदान की है। भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्त्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तत्त्वों से ही पर्यावरण की रचना होती है। इस तन्त्र का मुख्य और धुरी तत्त्व मनुष्य ही है, जो कि हर तरफ से पर्यावरण (आचरण द्वारा एवं विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा) को दूषित करने की चेष्टा में निरन्तर तत्त्व रहता है। 'पर्यावरण' (परि+आ+वरण) शब्द के अन्दर व्यक्ति, परिवार, समाज, उसके निवास, ग्राम, नगर, प्रदेश, महाद्वीप अर्थात सम्पूर्ण सौरमण्डल में होने वाली परिस्थितियाँ, शक्तियाँ हैं और हमारे चारों ओर की वस्तुएँ हैं, जो मानवीय क्रियाकलापों को तथा अन्यान्य पदार्थों को प्रभावित करती हैं और उनके अस्तित्व की सीमा बनाती हैं, सुरक्षा करती हैं। वेद के 'परिधि', परिभू', 'परिवृत्त' आदि शब्द सुरक्षा रूप प्रकार 'परकोटा' अर्थो में आए हैं। परमपिता परमात्मा ने जहाँ जीव को जीवन दिया, स्वयं जीव को अपना परिधि बनाया, कहीं उसने जड़ पदार्थो को भी संरक्षण के लिए परिधि रूप नियुक्त किया है। उन परिधियों में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौः, जल, अग्नि आदि देव, दिशाऐं, पर्वत, मेघ, वृक्ष, औषधि, वनस्पति, पशु आदि पदार्थ समाहित हैं। इन सभी रक्षक परिधि रूप पदार्थों में परमात्मा का प्रमुख स्थान है जिससे सभी जीवों की सुरक्षा होती है– *'सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः। यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्'* (अथर्व 8.2.25) अर्थात ब्रह्म परमात्मा एक ऐसा आवरण है, धारक है, परिधान है जिसको प्राप्त कर सभी सुख प्राप्त करते हैं। पर्यावरण के सभी सुरक्षा देने वाले तत्त्व जो परमपिता परमात्मा की ही देन हैं, उनसे मनुष्य तभी संरक्षण का लाभ प्राप्त कर पाता है जब उनका उचित उपयोग करें। इन सुखदायी तत्त्वों के रहते हुए भी मनुष्य क्यों दुःखी है, और ये तत्त्व क्यों सुख नहीं दे पा रहे हैं, इसी का वर्णन प्रस्तुत शोध–पत्र में किया गया है।

4

वैदिक उपदेश 'मनुर्भव' की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ. अनीता

असि. प्रोफेसर, संस्कृत, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा (उ.प्र.)

जो बौद्धिक उदात्त भावों की पराकाष्ठा के प्रतिमान हो सकते हैं, वे सभी भाव वेद में धनीभूत रूप से विद्यमान हैं। वेद प्राणीमात्र की कल्याण–कामना की शब्द–राशि है। परन्तु वर्तमान भारतीय समाज वेदोक्त ज्ञान से च्युतप्राय हो चुका है। आज परस्पर विचार–विषमता, द्वेष–भावना एवं मानव–मानव के बीच ऊँच–नीच व छोटे–बड़ें की मनोवृत्ति ने अम्बर जैसा विस्तार पा लिया है। परस्पर कलह तथा भेद–बुद्धि सहजतया, सर्वत्र देखी जा सकती है। न केवल भारतवर्ष में अपितु विश्वभर में मानवीयता अपनी पहचान खो चुकी है। परस्पर विरोधी परिस्थितियों में रहकर जीवन–यापन करने को विवश मनुष्य जाति के सम्मुख ऋग्वेद का 'मनुर्भव' मन्त्रोपदेश पुनः सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की प्रेरणा व बल प्रदान करता है। 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो। यास्क के अनुसार मननशील होने के कारण मनुष्य, मनुष्य कहलाता है– *'मनुष्यो मननात्, मत्वा कर्माणि सीव्यति'*। जो अपने कार्यों का सम्पादन सोच–समझकर विवेक–बुद्धि के साथ करता है, वही मनुष्य है। विवेकपूर्ण क्रिया के अभाव में ज्ञान को भारस्वरूप कहा गया है– *'ज्ञानं भारः क्रियां विना।* जो सोच–समझकर अपने कार्यों का सम्पादन करता है, उसी को विद्वान् कहा गया है– *'यस्तु क्रियावान् पुरूषः स विद्वान्'*। परन्तु किन–किन कार्यों को किया जाए एवं किन–किन कार्यों को त्याग दिया जाऐ इसका निर्धारण करने में विवेकी पुरुषों को भी मतिभ्रम हो जाता है– *'किं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं कवयोऽपयत्र मोहिताः'*। करणीय (विहित) कर्मों में प्रवृत्ति तथा अकरणीय (निषिद्ध) कर्मों में निवृत्ति होनी चाहिए। क्रिया–सम्पादन में कर्त्तव्यबोध का होना परमावश्यक है। इस

संसार कर्म के बिना व्यक्ति का शरीर–निर्वाह असम्भव है– *'शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः'*, जिसे कर्म से क्षणभर के लिए भी मुक्ति नहीं है, ऐसे कर्म को 'मनुर्भव' होकर सम्पन्न करो। जीवन में मानवता की पहचान करो। जगती में जितने भी श्रेष्ठ गुण, कर्म, पदार्थ व व्यवहार हैं, उनको जीवन में धारण करो। हमें *'वसुधैवकुटुम्बकम्'* का भाव रखते हुए न केवल परिवार, समाज और राष्ट्र की लोकमंगल–कामना करनी चाहिए अपितु विश्वसमाज में सबके कल्याण हेतु मंगलकामना करनी चाहिए। इस सम्बन्ध यजुर्वेद के उदात्त भाव दर्शनीय हैं– *'मित्रस्त्र चक्षुषा समीक्षामहे'* अर्थात् हम एक–दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें तथा सभी दिशा–उपदिशाओं के प्राणी हमारे मित्र हों– *'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'*। हमें किसी के प्रति छलकपट, द्वेष, हिसां इत्यादि कुटिल भावनाओं का आचरण नहीं करना चाहिए– 'मा नो द्विक्षत कश्चन'। हम में परस्पर एक–दूसरे के प्रति सहायता एवं सब ओर रक्षा की भावना होनी चाहिए– 'पुमान् पुमांसं परिपातु सर्वतः'।

5

वैदिक वाङ्मय में आचार्यो के नैतिक गुण एवं कर्तव्य : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. अनीता

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

वेद भारतीय शिक्षा एवं सस्कृति के मूल है। वैदिक काल में भारतीय जीवन का एक उद्देश्य था, एक आदर्श था। उस आदर्श की प्राप्ति संसार के समस्त भौतिक एश्वर्य से उच्चतर समझी गई। वैदिक काल में शिक्षा का विकास इसी आधार पर हुआ। वैदिक काल में शिक्षा एवं विज्ञान का विकास केवल ज्ञान या सुख के लिए न होकर जीवन को एक व्यावहारिक दिशा देने के लिए था। वैदिक वाड्.मय में जीवन तथा संसार की क्षणभंगुरता का अनुमान तथा मूल्य एवं भौतिक सुखों की सारहीनता के भाव ने भारतीय शिक्षा को आधार रूप दिया, और सम्पूर्ण शिक्षा परम्परा इन्हीं सिद्वान्तों पर विकसित हुई। वैदिक काल में विद्यार्थी इस संसार के उथल–पुथल भरे जीवन से परे प्रकृति की गोद में तथा आश्रमों में अपने आचार्यो के चरणों में बैठकर जीवन की समस्याओं एवं शैक्षिक विषयों पर चिन्तन–मनन करता था। आज की तरह वह केवल पुस्तकों के ज्ञान तक सीमित न रहकर जगत तथा समाज का व्यावहारिक ज्ञान अर्जित करता था। विद्यार्थी का आचार्य अर्थात् गुरू के घर पर रहकर उनकी सेवा करना एक अद्भुत परम्परा थी, जो वर्तमान में विश्व के किसी कोने में नहीं दिखलाई पड़ती है। वैदिक काल में आचार्य के साथ विद्यार्थी रहकर समाज के सम्पर्क में आता था। गुरू के गृहकार्य, श्रमसेवा, विनय एवं अनुशासन इत्यादि उसके परम कर्त्तव्य थे। विद्यार्थियों के कर्त्तव्यों के साथ–साथ आचार्यो के भी कुछ नैतिक गुण एवं कर्तव्य जैसे संयम, सदाचार, वाचस्पति मनुर्भव, वैज्ञानिक चिन्तन, दूरदर्शी और प्रसन्नचित इत्यादि थे। जिनकी विस्तृत चर्चा वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र में विचारणीय है।

वर्तमान शिक्षा एवं शिक्षण प्रणाली में भौतिकता का विकास एवं उन्नति अपने चरमोत्कर्ष पर है। वैज्ञानिकता के इस युग में शिक्षा एवं शिक्षण का उद्देश्य मात्र धनोपार्जन कर भौतिक सुख सुविधाओं को प्राप्त करना रह गया है, जबकि वैदिक काल में शिक्षा पद्धति एवं आचार्यो के नैतिक गुणों तथा कत्तर्व्यों के कारण शिक्षा का ऐसा स्वरूप परिलक्षित नहीं होता था।

6

शिक्षा एवं नैतिकता : वैदिक मत

डॉ. अर्चना दुबे

एसोशिएट प्रोपफेसर, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली, राजस्थान

शिक्षा द्वारा विद्या प्राप्ति का उद्देश्य है– अमृतत्व की प्राप्ति *'सा विद्या या मुक्तये अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते'*। शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं बल्कि व्यावहारिक ज्ञान भी है। छात्रा जब किसी भी माध्यम से, अध्ययन द्वारा अथवा जीवन के अनुभवों द्वारा कुछ सीखता है, तो वह शिक्षा प्राप्त कर रहा है।

'शिक्ष्येति इति शिक्षा'– शड् वेर्धौगों में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा का व्युत्पत्ति जन्य अर्थ है– वह विद्या जो स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का उपदेश है *'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारोयत्रा शिक्ष्येति सा शिक्षा'*। भारतमाता के स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के पश्चात् जो सबसे महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य राष्ट्र के सम्मुख है, वह है– 'शिक्षा'। शिक्षा को ही किसी देश का मेरुदण्ड कहा जा सकता है। इसी आधारशिला पर उन्नति–अवनति निर्भर रहती है। भावी पीढ़ी को जैसा बनाना हो वैसी शिक्षा–पद्धति ही एक साँचे की काम देती है।

7

शिक्षा और नैतिकता : प्रमुख जैन ग्रन्थों के सन्दर्भ में

डॉ. अर्चना रानी दुबे

पोस्ट डॉक्टरल फेलो, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जे. एन. यू, दिल्ली

शिक्षा और नैतिकता के प्रश्न पर जैन वाङ्मय में गम्भीर चिन्तन प्राप्त होता है। जैन शास्त्र में प्रमुख जैनागमों से लेकर प्रकीर्णकों तक में शिक्षा के उद्देश्य को लेकर विभिन्न दृष्टियों से चर्चा की गयी है। जैन दर्शन एक आचार प्रधान दर्शन है। जैनाचार्यों की दृष्टि में चारित्र शुद्धि या आचार शुद्धि के बिना जीवन की सार्थकता नहीं है। विद्या प्राप्ति की सार्थकता भी आचरण से ही परिभाषित होती है। ऐसी शिक्षा या ज्ञान का कोई अर्थ नहीं है जो चारित्र शुद्धि की दिशा में प्रगतिशील न करता हो। 'सूत्र कृतांग' में स्पष्ट रूप से कहा गया है– *'विज्जाचरणं पमोक्ख'* अर्थात् विद्या और आचरण से मुक्ति होती है। 'ऋषिभाषित' में उसी विद्या को समस्त विद्याओं में उत्तम माना गया है, जिसकी साधना करने से समस्त दुःखों से मुक्ति मिलती है–*'इमा विज्जा महाविज्जा, सव्वविज्जाण उत्तमाकृकृकृकृआयाभावं च जाणाति, सा विज्जया दुक्खमोयणी'* (इसिभासियाइं 17।1–2)। शिक्षा पद्धति को स्पष्ट करते हुए श्रुतग्रन्थ 'इसिभासियाइं' में कहा गया है कि जिस प्रकार एक योग्य चिकित्सक सर्वप्रथम रोग का ज्ञान करता है, उसका निदान, फिर औषधि का परिज्ञान करके रोग की चिकित्सा करता है, उसी प्रकार सम्यक् शिक्षा के द्वारा भी सर्वप्रथम मानवीय जीवन के दुःखों के कारणों का विश्लेषण किया जाता है फिर उन कारणों का निराकरण करके मनुष्य को दुःख से मुक्त कराया जाता है। जैन ग्रन्थों में शिक्षा की पद्धति व प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए शिक्षा को मानव जीवन के दुःखों से जोड़कर व्याख्यायित किया गया है।

वस्तुतः वर्तमान में जो शिक्षा पद्धति अपनाई जा रही है, उसका उद्देश्य मात्र सूचनाओं को विद्यार्थी के मस्तिष्क में भरना है, जिसमें जीवन मूल्यों का अभाव सा है। इस प्रकार जीवन–मूल्यों की शिक्षा के अभाव में वास्तविक शिक्षा का प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रमुख जैन–ग्रन्थों को आधार बनाते हुए वर्तमान में शिक्षा पद्धति तथा शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिए, इस बात पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला जाएगा।

8

वैदिक शिक्षा और राष्ट्रीय मूल्य–चेतना

डॉ. अरुणा शुक्ला

असिस्टैंट प्रोफेसर, बी. एल. एम. गर्ल्ज़ कॉलेज, शहीद भगतसिंह नगर, नवांशहर (पंजाब)

किसी भी देश, जाति, समाज, या संस्कृति के विकास का ज्ञान, वहाँ की शिक्षा से पता चलता है। प्रकृति–जगत् एवं मानव–जगत् के विषय में जो उदात्त परिकल्पनायें एवं सौन्दर्यबोध तथा जीवन को *सत्यं शिवं सुन्दरम्* बनाकर जीने की धारणा वेदों में मिलती है, यह युग की परिनिष्ठित, सुव्यवस्थित एवं धर्मोन्मुख शिक्षा–पद्धति का ही परिणाम है। भारतीय इतिहास और संस्कृति में संभवतः गुरु–शिष्य परंपरा का श्रेष्ठतम विकसित रूप दिखाई देता है। इस श्रेष्ठतम व्यावहारिक रूप को देखने से ज्ञात होता है कि बालक के जन्म लेते ही उसके ज्ञान–चक्षुओं को विवेक–दृष्टि प्रदान करने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती थीं। इसीलिये बालक का प्रथम गुरु मानी जाने वाली उसकी जन्मदातृ मां और दूसरा गुरु पिता माना गया है। वैदिक युग में जीवन भर मनुष्य अपने संस्कार, सुधार, परिष्कार और विकास की ओर अग्रसर रहता था।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी पृथक् राजनैतिक सत्ता होती है जिसमें राष्ट्रभूमि, राष्ट्रसंस्कृति, राष्ट्रभाषा महत्त्वपूर्ण अंग हैं। राष्ट्रभूमि की एक भौगोलिक सीमा होती है जिसके अन्तर्गत उस भूखण्ड की प्राकृतिक संपदा होती है। जो राष्ट्र मानवजीवनोपयोगी प्राकृतिक संपदाओं से जितना ही संपन्न होगा वह राष्ट्र उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। उस सांस्कृतिक परंपरा के प्रति स्वाभिमान की भावना विकसित करना वहाँ के निवासियों का एक परम कर्त्तव्य बनता है। इसी सांस्कृतिक मूल्यबोध के साथ अपने राष्ट्र की परंपरागत भाषा के प्रति आदर और सम्मान की भावना भी राष्ट्रिय–मूल्य के अन्तर्गत मानी जाती है। भाषा तथा उस भाषा में लिखित साहित्य का प्रभाव जीवन पर पड़ता है। राष्ट्रिय–एकता के लिए यह आवश्यक है कि हमारा सबके साथ विचार बहुत ही मित्रतापूर्ण होना चाहिए। इस विषय में यजुर्वेद का कथन है कि– 'समस्त संसार मुझे मित्र की दृष्टि से देखे। सारे प्राणियों की दृष्टि भी मेरी ओर मित्रतापूर्ण हो। हम भी दूसरों की ओर मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखें'। तैत्तिरीय उपनिषद् में विद्या को एक संहिता का रूप दिया गया है। इस विद्यारूप संहिता में आचार्य पूर्वरूप है, शिष्य उत्तररूप, विद्या सन्धि तथा प्रवचन संधान है। इस प्रकार वैदिक शिक्षा के आलोक में राष्ट्रिय मूल्य–चेतना तथा वैयक्तिक सदाचार–परायण जीवन इनसे ही व्यक्ति भारतीय जीवन–मूल्यों का आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

9

The Purpose of Education as Depicted in Taittiriya Upanishad

Dr. A. R. Tripathi

10/58, Indira Nagar, Lucknow (U.P.)

The main purpose of education is to the bringing up and training and strengthening the power of body and mind of a child by taking him to a high plane of thinking, feeling and experience. A child is full of curiosity which can be satisfied only through proper education. Education enables him to understand the external world and the world beyond that, and helps enhance his knowledge. The different subjects taught in the schools provide children with the knowledge of the world which he can observe, but there are several things happening that are beyond sensual observation of human beings. This knowledge consists of intrinsic inner mystery of human existence. The instructions related to the reality of life pave the way to morality and righteousness. Morality is ethical capability which provides the power of discriminating between right and wrong. A person equipped with morality can even judge his own conduct and deeds and will be motivated to follow the path of rectitude. Morality, therefore, must form an integral part of all types of education. The method of teaching adopted by the great Vedic sages emphasizes on aspects of the knowledge related to both external and spiritual world. The story of Satyakaam narrated in *Chhandogya Upanishad* shows how important was truthfulness for getting admission in a Gurukul. The Gurus taught the students the subjects needed in their future life.

The ideal conduct of the Gurus served as an example of morality and righteousness. According to *Taittiriya Upanishad* (Chapter I), knowledge is the junction of teacher and pupil, and instruction is the connection. In *Tattiriya Upanishad* it has been said that the truthfulness, self-study, and practicing virtues are the main instructions given by Gurus.

Modern education has given us ample opportunities to acquire the knowledge of the external world, but with all our scientific knowledge we cannot avert the catastrophes taking place in the world at different times. It also has contributed to the materialism and reduces our thinking capacity to comprehend the reality. The spiritual dimension of knowledge reminds about our duties towards other creatures of the universe living around us. The main purpose of education is to make a person a real human being. It is high time to turn the pages of great Indian scriptures which can indeed inspire the common man to lead a disciplined and regulated life endowed with morality.

10

वैदिक शिक्षा प्रणाली : आधुनिक सन्दर्भ में

डॉ. आशुतोष गुप्त

सहायक आचार्य, संस्कृत, हे.न.ब.ग.वि.वि., श्रीनगर गढ़वाल

भ्वादिगणीय शिक्षा (शिक्षण) धातु संभाव अर्थ में 'शिक्षा' शब्द की निष्पत्ति हुई है। इसका अर्थ है अभ्यास करना अर्थात् तात्पर्य यह हुआ कि किसी कार्य का बार–बार अभ्यास करना ही उस कार्य की शिक्षा को प्राप्त करना है। शक् धातु जिनकी गणपाठ में दो बार गणना की गई है, उसके आधार पर 'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। इस प्रकार इन तीनों ही प्रकारों में सन्तुलन स्थापित करके यदि 'शिक्षा' शब्द का अर्थ निकाला जाए तो तदनुसार 'शिक्षा' शब्द के तीन अर्थ किए जा सकते है– (1) अभ्यास, (2) सहिष्णुता एवं (3) शक्ति, सामर्थ्य अथवा सम्पादन की इच्छा। शिक्षा में मूल रूप से इच्छा की प्रधानता है बिना इच्छा के शिक्षा न तो ग्रहण की जा सकती है और न ही ग्रहण करवाई जा सकती है। भट्टोजिदीक्षित ने भी अपनी वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी में *'धनुषि शिक्षते'* लिखकर शिक्षा में इच्छा के महत्त्व को प्रकट किया है।

अतः शिक्षा मानव जीवन के परिष्करण एवं विकास की पद्धति है अथवा यों कहा जाए कि जीवन का प्रत्येक अनुभव ही शिक्षा से जाना जाता है। समस्त मानव जीवन ही शिक्षा का पर्याय स्वरूप है एवं शिक्षा ही जीवन का प्राण स्वरूप तंत्र है। व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व के सर्वाङ्गीण एवं सन्तुलित विकास को ही शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। शिक्षा को किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का अनिवार्य अंग कहा जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से न केवल व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास होता है अपितु यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत की संरक्षिका भी है। नयी पीढ़ी अपनी शिक्षा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति के प्रति विश्वास, आस्था एवं निष्ठा का भाव रख सकती है। एक ऐसी शिक्षा जिसकी आधारशिला उसकी संस्कृति में ही निहित हो। मानव अपने जीवन में जो कुछ अर्जित करता है, उसके मूल में शिक्षा ही निहित रहती है। जीवन की छोटी से छोटी बातें जैसे मनुष्य का चरित्र, उसका व्यक्तित्त्व, संस्कार, उसकी समग्र विचारधारा योग्यताएँ एवं उसकी आदतें। इन सारी बातों के मूल में शिक्षा ही प्रेरक शक्ति का काम करती है। शिक्षा के द्वारा ही नन्हा सा शिशु अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर एक सभ्य एवं सुशिक्षित मनुष्य बनकर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। शिक्षा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा समाज द्वारा सैकड़ों वर्षों से अर्जित किए गए समस्त अनुभवों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। अपने राष्ट्रीय गौरव एवं संस्कृति का ग्रहण भी बालक शिक्षा के माध्यम से ही करता है। शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का एकमात्र आधार शिक्षा ही है।

11

Moral Preachings : Both In East And West In the Light of *Vedas*

Dr. Bharati Sharma

Assist. Prof., English, S.S.D.P.C. Girls (P.G.) College, Roorkee, Haridwar (U.K.)

Society and man depends upon education for growth. Through education society transfers lofty ideals, expectations, traditions and cultural assets to the forthcoming generations in a way that they feel a spark for sacrifice and universalism. And it is the right and duty of every being to continue with this perennial flow. Present paper is sheer an effort to locate the imprints of vedic preaching both in East and West in the light of *Vedas*. Different Philosophical doctrines like Idealism, Naturalism & Pragmatism have defined education in various dimensions. The ultimate stage of Idealism, the first doctrine, is the meeting with *Parambrahma Parmeshwar* i.e. ultimate reality. Here, at this point we find unison of East & West *'रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव'*. William Wardsworth, the great poet both of nature and man also notices a sublime

spirit in the objects of nature which provides wisdom to man: '*One impulse from a vernal wood, May teach you more of man, Of moral evil and of good, Than all the sages can*'. Secondly, there stands doctrine of Naturalism in Education. Since Vedic age India is related to the worship of nature as *devas*. Naturalism preaches the social institutions to be based on 'liberty', 'equality' and 'fraternity'. Next there comes Experimentalism or Pragmatism in Education. It prones to creativity, change and says that all the moral issues like truth, reality, good and bad aspects are compensatory to each other. Thus it can be said that education means to shine inwardly, to search the internal truths and apply them for the welfare of the whole universe. As has been well said in the lines echoing the vedic sense of *Vasudhaiva Kutumbakam.*

12
Seven Vedic Decorum and the Society

Prof. Bhaskarnath Bhattacharyya
School of Vedic Studies, R.B.U. Kolkata (W.B.)

'Y*âny anavadyâni karmâni tâni sevitavyâni no' – (Taittiriyopanishad)* The Veda is gravestone of human civilization, culture, education, morality, ethics, and socialism and so on. Every aspects narrated in this holy testament are very much applicable and appropriate for the humankind. Actually it would not be an exaggeration if we say that the Vedas are the first oral foundation of this cosmos to erect itself on its own feet. Every *mantra*s, each and every Vedic lines, one and each word of the magnificent glossary of humanity were supposed to be uttered for the people, by the people and of course of the people. Here one mantra could be chanted from the *Rigveda* to initiate the discussion of this present paper – '*sapta maryyâdâ kavayas tatakshuh tâsâ mekâm idabhyahuro gât / âyor ha skambha upamasya nîle pathâ visarge dharunesu tasthau' 10.5.6.* It means one should never cross the decorum *(maryyâdâ)* of these seven primary elements of Vedic moral education. And so, to get him f`d from these seven great offenses a citizen must keep this idea unchallenged even at the cost of his life. The present paper intends to throw a glimpse of light on the present site and situation of moral education from the Vedic summit of learning, the final culmination of discipline and education.

13
Vedic Views on Current Issues Related to Women : Education and Morality

Prof. Bhu Dev Sharma
Professor, JIIT, Noida (U.P.)

Vedic approach on any subject is synonym with intellectual, comprehensive, deeply analyzed and well considered human system with universal validity. With quite an extensive Vedic literature that includes Vedas, *Brahmana*s, *Smirities*, and *Mahabharata*, etc., study on women has also drawn quite some attention of Vedic *Rishie*s and later scholars. These seminal works are replete with names, activities, contributions, and achievements in various fields. Modern India, after a rather long period of eclipse of its culture and tradition under alien rule, has suffered much degradation in its basics and values. Education being the most important instrument of transformation of individuals and society, and morality being the determinant of its level, women education & morality is a rather significant theme for the world at large. The paper proposes to poise some major current issues related to women education as also of their morality with Vedic views on them.

14
Vedic Views on Education and Morality: Modern Context

Lt. Col. K. R. Murty
Andhra Pradesh

In this article, I will go through the maze of ideas thrown in the Upanishads and the Gita which we all ag` contains the quintessence from all the Vedas. They will be so lofty that a doubt may arise as to their validity to today's world. However I will try to prove the validity of these ancient concepts to the modern world. In ancient *Gurkulas* education used to be finished by about the age of 20 years, when the student was to enter the practical world. Marry, earn, and move through the Life and reach the third *ashram* the *vanaprastha*. Thus the student used to learn from the beginning about the four *ashrama*s of life and the four *Paramartha*s of life.

While the student is going through the *nitya, naimittika karmas*, he was gradually introduced to the Upanishads. The stress was on the knowledge the Self. They also gave the reasoning through so many similes/parables and enquiries as in Kena Upanishad now he was made aware of something behind all this. The aim of the Vedas is to see beyond you and within you. In the article I will go through a lot more of fundamental concepts of extreme importance to the disturbed, demoralized and degraded life in the modern world.

15
ब्राह्मण साहित्य में जीवन–मूल्य : आधुनिक सन्दर्भ में

डॉ. दीप्तिशिखा श्रीवास्तव
प्रवक्ता, संस्कृत, श्रीगुरुनानक गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ

वैदिक साहित्य में प्रायः सभी क्षेत्रों में सत्य, त्याग, तप, पराक्रम, पारस्परिक सहयोग, विनय, पवित्रता, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा आदि मानवीय मूल्यों का निरूपण विशद रूप में दृष्टिगोचर होता है। वेद के यज्ञ भाग का प्रमुखतया विवेचन करने वाला ब्राह्मण साहित्य जीवन–मूल्यों और आचार–व्यवहार के सिद्धान्तों पर भी विशेष बल देने के कारण मानवीय आचार का नियामक और निर्देशक है। ऋग्वेदीय– ऐतरेय, शांखायनादि, यजुर्वेदीय– शतपथ, तैत्तिरीयादि, सामवेदीय– जैमिनीय, ताण्ड्यादि तथा अथर्ववेदीय– गोपथादि मुख्य ब्राह्मण ग्रन्थों में कहे गये हैं। सत्यादि नैतिक मूल्य आधुनिक सन्दर्भ में अत्यन्त प्रासंगिक और उपादेय हैं– प्रस्तुत शोधपत्र में इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

16
अथर्ववेदीय 'ब्रह्मचर्य–सूक्त' में शिक्षा का नैतिक दर्शन

डॉ॰ धर्मा
पूर्व उपाचार्या, संस्कृत, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ज्ञान–विज्ञान की गूढ़ धाराओं से आप्लावित, व्यावहारिक ज्ञान से सुशोभित तथा जीवन की समग्रता को अपने अंक में समेट लेने में समर्थ अथर्ववेद वस्तुतः अतुलनीय है। इसके वर्ण्य–विषयों में शिक्षा का प्रमुख स्थान है। वैदिक–चिन्तन के अनुसार शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के समन्वित विकास की सम्पादिका शिक्षा मानव मात्र को सर्वजनहिताय अनुभवजन्य नीतियों को दैनन्दिन जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित कर नैतिकता का मार्ग प्रशस्त करती है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य–सूक्त में ऐसी ही शिक्षा के नैतिक–दर्शन से सम्बद्ध अत्यधिक गहन चिन्तन समाहित है। इस सूक्त के ऋषि, ब्रह्मा तथा देवता ब्रह्मचारी का व्यापक अर्थ होता है – ब्रह्म (ब्राह्मी चेतना या अनुशासन में ही चलने वाला अथवा उसी का सेवन करने वाला) सूक्त के मन्त्रों में दर्शायी गई ब्रह्मचारी की महत्ता

इसी व्यापक सन्दर्भ में सिद्ध होती है। ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ वीर्य–रक्षा भी इसी व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत आता है। ब्रह्मचारी निरन्तर अभिवृद्धि के लिए, सर्वथा श्रेष्ठ बनने के लिए, सत्य एवं शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करता रहता है। प्रस्तुत पत्र में ब्रह्मचारी तथा आचार्य के स्वरूप एवं महत्त्व, दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध, श्रम तथा तप के तत्त्व–ज्ञान, पशु–पक्षियों तथा ब्रह्मचर्य से राष्ट्र–संरक्षण आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर विवेचन का विनम्र प्रयास किया जायेगा। आशा है यह वैदिक–चिन्तन शिक्षा और नैतिकता के बदलते सन्दर्भों में परिवर्तन लाने में सक्षम होगा।

17

वैदिक आचारशास्त्र बनाम नैतिकता : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. गीता शुक्ला

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत, भ.दी.आ.क.स्नाकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी (उ.प्र.)

वेदों के अध्ययन व अनुशीलन से प्रत्येक समाज राष्ट्र व सम्पूर्ण विश्व की उन्नति होती है क्योंकि विश्व के प्रायः सभी धर्मों में समष्टि की नैतिकता से व्यष्टि की नैतिकता का समावेश है। आज नैतिकता के ह्रास के कारण देश अनेक ज्वलन्त समस्याओं से संतप्त है। अतः आवश्यकता है ऐहिक व आमुष्मि मंगलभावना से ओतप्रोत श्रुतियों को आचरण व व्यवहार में ढालकर विद्यमान समस्याओं के समाधान की। नैतिकता का सर्वोच्च आदर्श किसी विशेष नियम को मानना नहीं प्रत्युत एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चेष्टा करना है। समाज को एक समुचित विकास की गति प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि मानव जीवन को कुछ विशिष्ट नियमो के अन्तर्गत आबद्ध किया जाए। इन्हीं विशिष्ट नियमों की कल्पना का साकार रूप ही नैतिकता है। मन, वचन व कर्म के आधार पर नैतिकता के विभिन्न रूप हैं।

वैदिक आचारशास्त्र मानव जीवन को संयम व मर्यादा की शिक्षा देकर उसे दुर्भावनाओं, दुर्विचारों व दूषित तत्त्वों से मुक्त करके सद्भावों, सदविचारों, सदगुणों व सद्प्रवृत्तियों से मुक्त करता है क्योंकि वेदों में सर्वत्र इनकी शुचिता विद्यमान है। ऋग्वेद में विचारों की पावनता, यजुर्वेद में कर्मों की पवित्रता, सामवेद में उपासना की शुद्धता तथा अथर्ववेद में स्थिर गति पर प्रकाश डाला गया है। मनुष्य के चिन्तन, वचन व कर्म उसके व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्व हैं। अनैतिक आचरण से प्राण ऊर्जा व्यर्थ होती है। समूचा व्यक्तित्त्व विश्रृंखलित व विखण्डित होने लगता है। वेदोक्त नैतिकता ही उस ऊर्जा क्षय को रोक सकती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में नैतिकता में समाविष्ट होने वाले नैतिक मूल्यों का वैदिक चिन्तन पर आधारित विशद विवेचन किया गया है।

18

Moral Values As Enshrined In The Upanisads : Its Relevance In Modern Age

Dr. Hiran Sarmah

Associate Professor, Dept. of Sanskrit, Gauhati University (Assam)

The Upanishadic literature contains some principles which have everlasting values viz. moral value, social value, spiritual value etc. Among these the moral value dictates how we live our lives, behave and treat each other. Moral value is a universally accepted ethical principle that governs the day to day life of an individual as well as the society. When we live our life according to values that are based on honesty, truthfulness, modesty, tolerance, kindness etc. then we can form positive bonds with other people. Moral value is conceived as of cardinal value for the stabilization, development of society and for the propagation of culture. The progress of any society is not possible without certain amount of moral virtues among the members constituting the society. The progress of a nation depends not merely on its socio-political or

economic structure but basically on the character of its people. Each and every person should acquire the moral values. Moral value makes a society safe and comfortable to live in. Students and youth are the future of a nation and each and every young mind has to be inculcated with proper training for the growth of moral and spiritual values and grow individuality in each of them for the present and the future. They have to be mentally physically, morally and emotionally fit for the betterment of the society. Truthfulness, righteousness, non-violence, charity, honesty, good conduct, tolerance ,respect for elders, compassion, kindness, honesty in every sphere of life, observance of one's own dharma etc. are some of the moral values found in the Upanishads; these have some everlasting relevancy for all ages of human history for upgrading human interest.

The modern society has faced degradation of values and ethics, people have lost faith on God or spiritualism. Social unrest, hatred, ethnic conflict, communal clash, dishonour for elders, g`d for money and material resources etc. have prevailed in the society. The young generation have, to a large extent, become demoralized, frustrated; peace and tranquility in the family and social life is disappearing fast. These cannot be allowed to continue in the interest of humanity, society and the nation. The Upanishadic teachings about the moral values can help us to lead light in mitigating the miseries faced by the society.

The present paper is an attempt to highlight some of the moral values as available in the Upanishads and its relevance in the modern age.

19

वैदिक 'सोम' एवं उसकी वर्तमान स्थिति : एक विमर्श

डॉ. इन्दू बंशी

असि. प्रोफेसर, संस्कृत, डी.ई.आई. दयालबाग, आगरा (उ.प्र.)

'सोम' शब्द के श्रवणमात्र से हमारे मस्तिष्क में एक साथ अनेक विचार विचरण करने लगते हैं, यथा– सोम वैदिक ऋषियों की सुरा थी अथवा कोई औषधि थी या फिर कोई देवता कुछ विद्वानों ने सोम को चन्द्रमा का विशेषण भी माना है। 'सोम' शब्द वेद का एक महत्त्वपूर्ण एवं ऐसा शब्द है जिसका अर्थ ठीक से न समझने पर 'वेद' का अर्थ समझना ही कठिन है। वैदिक वेदताओं में सोम देवता का प्रमुख स्थान है और वेद को समझने के लिए उसके देवताओं का ज्ञान परमावश्यक है। 'सोम' से सम्बन्धि सूक्तों को समझने के लिए 'सोम' का तात्पर्यार्थ समझना नितान्त आवश्यक है। ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम मण्डल सोम देवता से सम्बन्धित है तथा सामवेद 'पवमान–पर्व' में कुल 119 मन्त्र हैं जिनके देवता सोम ही हैं। पवमान सोम पवित्रता, शान्ति, आनन्द एवं समरसता का प्रतीक है। मनोनुकूल अर्थ निकलाते हुए सोम को मात्र सुरा मान लेना सोम का ठीक–ठीक अर्थ निकालना नहीं है।

'सोम' शब्द निचोड़ने अर्थ वाली षुञ्–अभिषवे धातु से निष्पन्न हुआ हैं 'सोम' शब्द के प्रसिद्ध व प्रचलित दो अर्थ हैं– चन्द्रमा और सोम औषधि। औषधि सोम इसलिए कहा गया है, क्योंकि उसे निचोड़कर उसका रस निकाला जाता है। यही औषधिवाचक 'सोम' शब्द देवता के रूप में बहुत अधिक प्रयुक्त नहीं हुआ है। ऋग्वेद में यद्यपि सोम देवता अथवा पवमान सोम वाली हजार से भी अधिक ऋचाएँ हैं, तथापि निरूक्तकार ने उन्हें सोम औषधिपरक या चन्द्रमापरक नहीं माना है। उणादिकोष 1 में 'सु' धातु से 'मन्' प्रत्यय करके 'सोम' शब्द की व्युत्पत्ति कही गयी है। 'सु' धातु षू–प्रसवैश्वर्ययोः भ्वादि और अभिषवे स्वादि में ग्रहण की जा सकती है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो निचोड़ा जाता है, जो उत्पन्न करता है और जो ऐश्वर्य का हेतु होता है, वह सोम है।

20
Vedic Views on Education & Morality : Modern Context

Mr. Jai P. Agarwal
Ex-Chief Engineer, Haridwar (Uttarakhand)

What is education and what is morality? Dictionary defines education as the act or process of imparting or acquiring knowledge, general and specific, developing powers of reasoning and judgment, as also preparing oneself and others intellectually for mature adult life and more. That means morality is a quality of human behavior that reflects upon his good or bad conduct in society and has to be inculcated by following in the footsteps of virtuous people as also by some exposure to scriptures and more. Education in the Vedic Times: Strong moral character was the most important ingredient and hallmark of education at both ends— the student and the teacher in the Vedic system. The traditional Vedic System of education in India was ideal as it synthesized education with moral values. In the Vedic Times the system was dedicated to holistic positive transformation in the life of the student by enlarging his intellectual horizons through value based education from the Vedas. The *acharyas*/teachers laid stress on character building, development of attitude towards society and nation, righteousness, piety and good human relations. The *gurukul*s, situated in Acharyas's homes/*ashram*s were residential in nature. The *acharya* laid emphasis on both kinds of education/*vidya* to the students—*aparavidya*, the mundane knowledge of worldly skills and the *paravidya*, the spiritual knowledge of the Creator and Self and more. Modern education and impact of science, Modern advancement of science has done tremendous good to human life by providing immense comforts to man. It has in fact, added luster to human life. But it has diminished the dimensions of man's heart. Though man has become strong, he has also become self-centered and egoist. He wants to usurp all what comes his way. Like the strong large fish that eats up the weaker ones in the kingdom of the seas; like the lion or the wolf who eat up all weaker species in the jungle, man wants to reign supreme on Earth without caring for other beings. The first moral teacher of a child is in his home, his mother and father. But schools have their full share of responsibility in grooming the young into a useful person to face the challenges of life in human society. In the West, especially in democratic countries like the US, there is problem. They can't press morality from the religious books in public schools. But not so in private schools run by missionaries. As a result private institutions of Elementary, Middle and High Schools run by Christian, Islamic or any other missionaries are openly indoctrinating their pupils into their faiths. Hindus are on the back foot and more.

21
वैदिक शिक्षा–पद्धति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता

डॉ. किरन देवी
सहायक आचार्य–संस्कृत, रतनसेन पी.जी. कॉलेज, बांसी, सिद्धार्थ नगर (उ.प्र.)

शिक्षा की प्राप्ति के द्वारा ही मनुष्य का नैतिक विकास सम्भव है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने उत्तरदायित्वों को समझता है तथा विवेक और अविवेक का निर्णय करते हुए कर्म करता है। विद्या मनुष्य का नेत्र है, जिसके द्वारा वह जीवन–दर्शन कर पाता है तथा सत्यासत्य का निर्णय करता है। सत्य मनुष्य को प्रगति की ओर ले जाता है और असत्य से उसका पतन होता है। सत्य और असत्य, विद्या और अविद्या तथा ज्ञान और अज्ञान का निकारण तब तक नहीं हो सकता जब तक कि मनुष्य स्वतः ज्ञान प्राप्ति का प्रयास नहीं करता या अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान को उपयोग में नहीं लाता। पूर्वजों की ज्ञान–परम्परा का अध्ययन कर और उसके अनुसार आचरण कर एवं उसकी वृद्धि करके ही जीवन निर्वहन करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के लिए विद्यार्जन आवश्यक है।

बालक के व्यक्तित्व का निर्माण संस्कारों से होता है। बचपन में जैसा संस्कार पड़ेगा, वैसा उसका व्यक्तित्व बनेगा। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए वैदिक शिक्षा–पद्धति में बालक को गुरुकुल में भेजा जाता था इसीलिए उस शिक्षा–पद्धति का नाम ही गुरुकुल–शिक्षा–पद्धति था। शिक्षा की वैदिक विचारधारा में बालक को इतना महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है कि उसके जन्म सुधार के लिये 16 संस्कारों की कल्पना की गयी है। बालक की शिक्षा क्या है, मानों संस्कारों का ही एक खेल है। शिक्षा का उद्देश्य ही है, व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास कर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कराना। प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैदिक शिक्षा–पद्धति की उपादेयता पर विवेचन किया जायेगा।

22
The First Script of World

Dr. Krishna Narayan Pandey

Sanskrit Newspaper, Lucknow

The first script of world-As shrishti creation is credited to Brhma , Ved & script inventor is also Brhma God. All Brhmi letters are present in 419 signs letters of Sindhu civilisation. Sindhu U=Pot=P,C=T deciffers UC=PT. Thus Puran names, Shriram, Vasudev & Ved mntras have been read with Pnctntr ktha tablets by Dr. Karuna Shankr Shukla Rajrajeshvri Mndir Bangrmau Unnao 209801 Cell09450847877.Coordination with all such researches will light hidden history of mankind. Ved mntr Ritm c stym.....in 24 pictographs the story of creation has been found in North America.Roman ABCFGHJKLMNPRSUYZ letters have similarity with Nagri letters.also.The first inscripted Hnumannatkm was deciferred in period of Vikrmadity 57 B.C. &Bhoj 1000-1055A.D. The script was Brahmi.

23
चरित्र निर्माण – व्यक्तित्त्व विकास

प्रो. लल्लन प्रसाद

उपाध्यक्ष, वेव्ज़ एवं पूर्व डीन, बिज़िनस इक्नोमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नवयुवकों का आह्वान करते हुए स्वामी विवेकान्द अक्सर कहा करते थे– 'उठों, जागों और तब तक मत रूकों, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाती'। जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना और उसे प्राप्त करने के लिए अपने को योग्य बनाना और प्रयत्न करना ही सार्थक जीवन है। ऋग्वेद में देवताओं की आराधना करते समय उनसे धन, सम्पत्ति, यश, ऐश्वर्य और स्वास्थ जीवन की कामना की गई है। भारतीय संस्कृति ने जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया है, वे हमारे वेदों, उपनिषदों, पुराणो, रामायण, गीता आदि महान ग्रन्थों से निकले हैं। तुलसी, सूर, कबीर, मीरा जैसे भक्त कवियों एवं कवियित्रों की वाणी से प्रस्फुटित हुए हैं। शङ्कराचार्य, रामानुज, अरविन्द जैसे महर्षियों ने इस युग में जिन्हें प्रसारित किया है। ऐसे जीवन–मूल्य (वैयक्तिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, पर्यावरण, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक इत्यादि) राष्ट्र एवं समाज के उत्थान के लिये नितान्त आवश्यक है। शारीरिक मूल्य हमें प्रेरित करते हैं एवं स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखाते हैं। आध्यात्मिक जीवन–मूल्य हमें ईश्वर से जोड़ते हैं तथा बुरे कर्मों से बचाते हैं। पर्यावरण सम्बन्धी मूल्य नए नहीं है। राजनैतिक जीवन–मूल्य ऐसे शासन की परिकल्पना पर आधारित है, जहाँ शासन और शासित में शोषक–शोषित का सम्बन्ध न हों। सांस्कृतिक मूल्यों पर सभ्यता निर्भर होती है। नई पीढ़ी के उज्जवल भविष्य के लिए उनके मन में राष्ट्र–प्रेम, अपनी संस्कृति और समाज से लगाव एवं जीवन–मूल्यों के पालन में रूचि बढ़ाना आवश्यक है।

24

वैदिक जीवनमूल्य और उनकी प्रासंगिकता

डॉ. मंजूलता शर्मा

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सैण्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा (उ.प्र.)

आजकल यद्यपि मानव की भौतिक प्रगति अपने उच्चतम शिखर पर है तथापि उसकी धार्मिक आस्था, उसके क्रमागत विश्वास और आचरण की शुद्धता प्रभावित हो रही है। वेद पुराणो ने जिन जीवन मूल्यों की ओर संकेत किया था उनपर से लोक दृष्टि परावर्तित हो रही है। वस्तुतः आर्य संस्कृति व्यक्ति और समाज दोनों के विकास का आह्वान करती है। इस उभयोन्नति के लिए आर्यो ने जिस यज्ञ संस्था का निर्माण किया वह इच्छित फलदायी है परन्तु यह फल तब ही प्राप्त होता है जब व्यक्तिगत हित छोडकर सामाजिक व्यवस्था के सन्तुलन की बात की जाये। गायत्री मन्त्र इसी शुद्ध प्रकाश का मन्त्र है जिसमें श्रेष्ठ, बुद्धि और श्रेष्ठ कार्य में उसके, निवेश की प्रार्थना है। इसी प्रकार यर्जुर्वेद के एक मन्त्र में इहलौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों को प्रदान करने की कामना सूर्य से की गई है– *'ओउम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव'*।

वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार और गिरते हुये नैतिक मूल्यों का प्रमुख कारण मानव की अदम्य लालसा है। ऐसे में यह श्लोक उसके मतिश्रम और संताप को दूर कर सही दिशा निर्देश करता हैं। इसमें मनुष्य की भिक्षुक वृत्ति का अभिप्रायः कर्महीन जीवन से नहीं है अपितु अपरिग्रह की वृत्ति के पोषण से है। संग्रह की वृत्ति के कारण मधुमक्खी अपने मधु के साथ ही जिस प्रकार नष्ट हो जाती है उसी प्रकार संग्रही मनुष्य भी इस संसार के मोह में आबद्ध होकर सांसारिक कष्टों को भोगता रहता है।

वस्तुत हमारे समस्त वैदिक मन्त्रों में लोकजीवन के कल्याण की भावना विद्यमान है। क्योंकि वहाँ पृथ्वीसूक्त है, पर्जन्य सूक्त है, उषा की स्तुति है, नदियों के प्रति श्रद्धा है पर्यावरण के प्रति चेतना है जो जुए जैसी बुराई को दूर करने का विश्वास भी है। मन के शिवमय होने की कल्पना हमारे वेद के शिवसंकल्प सूक्त में है। हम भारतीय जो व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर विश्वकल्याण की बात करते हैं, सबके सुखी और निरोगी होने का स्वप्न देखते हैं, सबके सुखद भविष्य की योजनाएँ बनाते हैं अपने जीवन मूल्यों से कब तक अलग रह पायेंगे। अतः आतंकवाद से भयभीत विश्व के लिए इस मंगल कामना के साथ यही प्रार्थना करते है कि – *'यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योष्भयं नः पशुभ्यः'*।

25

वैदिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के 'मानव उत्कर्ष प्रारूप' का अध्ययन

डॉ. मेघ पाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, लाईफ मेंजमैन्ट विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

प्राचीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति सदा से ही अपनी गौरवपूर्ण आभा से सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करती रही है। वेद और वेदांत इसकी अनुपम विरासत हैं। आज इनका अध्ययन मात्र इसलिये आवश्यक नहीं कि हम इसकी गौरवगाथा सिद्ध कर सकें, अपितु इसलिये अपरिहार्य है कि सामयिक समस्याओं के समाधान हेतु वहाँ से उपयोगी सूत्र एवं सिद्धांत पाए जा सकें। न केवल भारतवर्ष का, अपितु सारे विश्व का ध्यान उपयुक्त शिक्षा–पद्धति की खोज की ओर अटका हुआ है; सारे राष्ट्र इस अनुसंधान में लगे हैं कि कौन–सी ऐसी शिक्षा प्रणाली चलाई जाए जो विश्व शांति की स्थापना और मानव उत्कर्ष में सहायक हो। वैदिक शिक्षा–पद्धति ही वह अक्षय पात्र है, जिसकी महिमा से देश चक्रवर्ती एवं जगतगुरु कहलाया तथा संपदा, समृद्धि एवं वैभव के चरम शिखर पर पहुँचा। यह सर्वमान्य सत्य है कि वैदिक संस्कृति के मानव उत्कर्ष आधारित शिक्षण को अपनाकर ही देश ने सब कुछ पाया और आज यदि राष्ट्र ने बहुत कुछ गँवा दिया है तो इसका कारण अपने संस्कृति सत्य की विस्मृति ही है। जीवन में इसकी स्वीकृति से गरिमामय वर्तमान की रचना की जा सकती है।

पं श्रीराम शर्मा आचार्य की 'मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्ग का अवतरण' अवधरणा पर आधारित देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने ऐसी एक साहसपूर्ण पहल की है। इस विश्वविद्यालय के सभी सूत्र, सारी प्रक्रियाएँ एवं समस्त पुरूषार्थ विद्यार्थी को वैदिक मार्गदर्शन में मानव उत्कर्ष की ओर बढ़ चलने के लिये प्रेरित व विकसित करने के लिये कृतसंकल्पित हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय का उद्देश्य भारत के ऋषियों, संतों एवं मनीषियों द्वारा स्थापित जीवन मूल्यों, परम्पराओं एवं प्रयोगों में निहित है। यहाँ मनुष्य में निहित देवत्व को उभारने, निखारने एवं विकसित करने का विज्ञान–विधान है। वैदिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों– 1. व्यक्तित्व का समग्र विकास, 2. व्यक्ति में कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व की भावना जागृत करना एवं 3. वैदिक साहित्य व संस्कृति को संरक्षण प्रदान करना। इन बिंदुओं तथा वर्तमान आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने इन्हें कहीं न कहीं अपने संस्थान में वरीयता दी है।

26

वैदिक मूल्यों की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रासंगिकता

डॉ. मोनिका मिश्रा

असि.प्रो., संस्कृत, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रस्तुत शोघपत्र में आघुनिक शिक्षा–पद्धति तथा उसके विविघ पहलुओं पर विचार किया गया है, आज शिक्षा की क्या स्थिति है। शिक्षा दिन–प्रतिदिन भौतिकता की ओर अग्रसर हो रही है, आज विज्ञान एवं तकनीक ने प्राचीन नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर कुठाराघात किया है। ऐसी परिस्थितियों में वैदिक मूल्यों का समावेश ही शैक्षिक स्तर को उत्तरोत्तर उन्नति प्रदान कर सकता है, और समाज को गर्त में जाने से बचा सकता है। इस प्रक्रिया में मात्र औपचारिक शिक्षा ही एकाकी रूप से उत्तरदायी नहीं है, अपितु औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ अनौपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा भी समान रूप से उत्तरदायी है । इन तीनों ही शिक्षाओं में वैदिक मूल्यों की उपादेयता संपूर्ण शिक्षा की प्रक्रिया पर सकारात्म प्रभाव डालेगी, इस शोघ–पत्र को प्रस्तुत करने का यही उद्देश्य है।

27

Vedic Education, Culture and Mahatma Gandhi

Mr. N.C. Beohar

Advocate, Jabalpur (M.P.)

It cannot be said that Mahatma Gandhi was a Vedic scholar. Nevertheless, he had studied deep into the beauties of all the four Vedas and *Upnishad*s so much so that he was able to converse almost on equal terms with eminent Vedic scholars as Dr. Dhruv of the BHU and S. D. Satvalekar and others. He called *Shrimadbhagwat Gita* as his mother and he regarded *Gita* as the most infallible guide in all his temporal transactions. He has written and spoken very extensively about education. He was opposed to extension of formal English education to young boys and girls. He did not see much merit in an education system which did not lay complete emphasis upon the building on character. He believed that the only purpose of education should be to prepare boys and girls for the call of service to the society and to the nation. He did not even impart such English based education to his four sons Harilal, Ramdas, Manilal and Devdas. He advocated the system of '*nayee talim*' i.e. an entirely revolutionary new system of education to prepare boys and girls for the cause of national service in complete tune with ancient Vedic values and cultures. The Vedas, *Gita* and the *Upnishad*s taught to the Mahatma the cardinal principle of universality of soul and that the entire humanity is a big family. This doctrine helped him to see no distinctions between the followers of different faiths. To the Mahatma, his family was not confined merely to his closest personal family members, but his family included his neighbours. friends and all of his acquaintances near or distant.

28

औपनिषदशिक्षायामाचारप्रतिष्ठा

डॉ. नवलता वर्मा

अध्यक्ष, संस्कृत, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर (उ.प्र.)

मानवजीवनस्य चरमलक्ष्यं पूर्णतायाः प्राप्तिः सा चाभ्युदयनिःश्रेयसयोः समवाप्तेः हेतुभूतायाः वेदरूपापराविद्यायाः ब्रहमरूपपराविद्यायाश्चाभ्यासेन सम्भाव्यत इति विपश्चितां मतिः। पराविद्याया अप्याधारो वेद एवेति *'सर्वं वेदात्प्रसिध्यति'*, *'वेदोखिलो धर्ममूलम्'* वचनैर्ज्ञायते। किन्तु समस्तवैदिकवाङ्मयस्य चिन्तनं धर्माचारप्रतिष्ठायां पर्यवस्यतीति नात्र सन्देहः। उक्तमपि *'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' 'आचारो हन्त्यलक्षणमि' इति* च। समस्तवैदिकचिन्तनस्य सारभूतत्वाद्वेदान्तपदवाच्या उपनिषदः क्वचिदाख्यानोपाख्यानतया क्वचिदाचार्यान्तेवासिनोः संवादतया क्वचिच्छास्त्रार्थतयोपदेशतया चाचारस्य स्वरूपं महिमानं च साधयन्त्यः दृश्यन्ते। ईशावास्योपनिषदि सत्यधर्माय दृष्टये प्रार्थयनृषिः *'त्यक्तेन भुञ्जीथाः'*, *'मा गृधः'* इति च, कठोपनिषदि पितृवत्सलता, अलोलुपत्वं, प्रेयोष्पेक्षया श्रेयोमार्गस्य वरणं, श्रेष्ठजनेभ्यः प्रबोधनं, आचार्यस्याचारवत्त्वं, शिष्यस्य विद्यापात्रत्वमित्यादिविषयाः, तैत्तिरीयोपनिषदि समावर्तनोपदेशमिषेण ब्रह्मचारिणो गृहस्थस्य चाचारः, छान्दोग्योपनिषदि *'विद्या ददाति विनयम्'* इत्यस्य वचनस्य साक्षाद्व्यवहारः एवमेवान्यत्राप्युपनिषद्वचनेषु विविधा आचारोपदेशाः प्राप्यन्ते। साम्प्रतिके काले पाश्चात्यसभ्यताया अन्धानुकरणस्य दुष्प्रभावाद् भारतीयशिक्षायाः वर्तमानस्वरूपमर्थप्रधानं सञ्जातं यत्र धर्मनैतिकताचारशुद्धिमानवीयसंवेदनासर्वहित– कामनादिविषयाः स्वार्थचिन्तनस्य ग्रासभूताः इव दृश्यन्ते। एतस्यामवस्थायामुपनिषदां शिक्षाणां नितान्तं प्रासङ्गिकता वर्तते। शोधपत्रेष्स्मिन्नेतद्दृशैव यथामति विचारो विधीयत।

29

वैदिक शिक्षा–पद्धति वर्तमान में भी प्रासंगिक

डॉ. नीलम गौड़

प्राध्यापिका, आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय, दिल्ली

वैदिक काल में शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहा गया है– *'सा विद्या या विमुक्तये'* अर्थात् वास्तव में विद्या वही है जो समस्याओं का समाधान कर मुक्ति दिलाए। वैदिक काल में मानव की आयु 100 वर्ष मानते हुए मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया। बालक के जन्म से पूर्व के संस्कार उसके जन्म की मंगल कामना हेतु तथा जन्म के पश्चात् के संस्कारों द्वारा उसे भावी जीवन के लिए राष्ट्र के लिए, समाज के लिए बाल्यकाल से ही संस्कृत व सभ्य बनाने का प्रयास किया जाता था। संस्कारों में चार संस्कार–विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ तथा समावर्तन–शिक्षा से ही संबंधित थे। शिक्षा के उद्देश्य पर विचार करते हुए वैदिक ऋषियों ने अन्तःशक्तियों को समुचित रूप से विकसित करना शिक्षा का प्रथम व अन्तिम ध्येय स्वीकार किया। प्रस्तुत शोधपत्र में आज भी प्रासंगिक वैदिक शिक्षा–पद्धति के तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है, यथा–वैदिक प्रार्थनाएँ, विश्व की कल्याण कामना, श्रद्धा भाव, तपोमय जीवन, धर्म का प्राधान्य, अद्भुत गुरुकुल–पद्धति, व्यापक पाठ्य विषय, शुद्ध उच्चारण व शुद्ध आचरण की शिक्षा, शिक्षा का व्यापक दृष्टिकोण तथा नैतिक आदर्शों पर विशेष बल।

वैदिक शिक्षा के ये तत्त्व ही मानव को सच्चे अर्थों में शिक्षित करते हैं। वैदिक शिक्षा–व्यवस्था में मानवता प्रेम, प्रकृति प्रेम सर्वोपरि था, ईश्वरीय प्रार्थनाओं भावनाओं, श्रद्धा आदि का महत्त्व था जिनके द्वारा मनुष्य मानवता व समाज के प्रति संवेदनशील होकर भोगवाद को स्वीकारता था अर्थात् त्याग की भावना से भौतिक वस्तुओं का उपभोग करता था। मानवता, राष्ट्र व समाज की सुरक्षा एवं सुगठित विकास हेतु वैदिक शिक्षा–पद्धति आज भी महत्त्वपूर्ण है, प्रासंगिक है। वर्तमान युग में आवश्यकता है कि वैदिक शिक्षा पद्धति के उन तत्त्वों को सार्थक रूप से आधुनिक शिक्षा पद्धति में सम्मिलित किया जाए। पाठ्यक्रम की दृष्टि से, भावनाओं, संवेदनाओं की दृष्टि से, गुरू–शिष्य संबंध की दृष्टि से तथा विशेष रूप से नैतिक मूल्यों द्वारा ऐसी शिक्षा प्रदान की जाए जो छात्रों को आन्तरिक रूप से ठोस आधार प्रदान करे, स्वावलम्बी बनाने के साथ ही उन्हें संवदेनशील, प्रकृति–प्रेमी बनाए। शिक्षित होने के पश्चात वे रोजगार के लिए चिन्तित न हों, कुण्ठित न हों अपितु स्वयं में उस सकारात्मक शक्ति पुंज को अनुभव कर सकें जिसके द्वारा प्रत्येक

समस्या का समाधान किया जा सकता है। अंसभव शब्द उनके शब्दकोश में स्थान न बना पाए वे ऊर्जावान् बनें, ओजस्वी बनें, तेजस्वी बनें, मनस्वी बनें तथा सदैव ईश्वर से प्रार्थना करें– *'तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि, वीर्यं मयि धेहि, बलमसि, बलं मयि धेहि, सहोऽसि, सहो मयि धेहि'* (यजुर्वेद 19.9)।

30

वेदकालीन शिक्षक की भूमिका की प्रासङ्गिकता–आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में शिष्यों में नैतिक मूल्य संवर्द्धन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. नीलम रानी श्रीवास्तव

रीडर, संस्कृत, ए.पी. सेन मेमोरियल गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, चारबाग, लखनऊ (उ.प्र.)

पिछले दशकों में सांस्कृतिक जीवन में भारत में ही नहीं, वरन् विश्व में इतना उतार–चढ़ाव आया है कि शिक्षक, जो संस्कृति पताका का वाहक है, विघटनकारी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी हो रहा है। यों तो समाज का सारा का सारा वातावरण ही इतना अधिक विषाक्त हो गया है कि नैतिक मूल्यों की चर्चा करना अरण्यदोहन सा लगता है। लेकिन समाज के किसी और वर्ग का संस्कृति से अटूटि सम्बन्ध चाहे न भी हो, किन्तु शिक्षक का उस देश और जाति की संस्कृति से चोली–दामन का साथ रहा है। इस सांस्कृतिक विघटन के परिप्रेक्ष्य में जहाँ हम राजनीति को दोष देते हैं कि भ्रष्ट राजनीति जन–जीवन पर हावी हो गयी है, वहाँ शिक्षक के जीवन में हम सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास देखते हैं। क्या आज के शिक्षक के लिए सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को अपनाना और उन्हें भावी पीढ़ी में हस्तान्तरित करना नैतिक कर्त्तव्य है? ये हमारे लिए विचारणीय प्रश्न हैं। आज इसी प्रसङ्ग में हमें नैतिक मूल्यों के संवाहक के रूप में वेदकालीन शिक्षक की भूमिका की प्रासङ्गिकता पर विचार करना होगा।

वैदिक युग में शिक्षक को 'आचार्य' कहा गया है। वेदकालीन आचार्य को बालक के जीवन को सुसंस्कारित करने का ही नहीं वरन् उसके जीवन की प्रारम्भिक नींव को सुदृढ़ बनाने का श्रेय भी प्राप्त था। मनुष्य के चरित्र का उत्थान शिक्षा का उद्देश्य था। इसके अन्तर्गत व्यक्ति नैतिक क्रियायें सम्पन्न करता हुआ सन्मार्ग का अनुसरण करता था। वैदिककालीन आचार्य अपने शिष्य का भी आदर और सम्मान करता था तथा शिष्य भी अपने आचार्य को देवता की तरह पूजता था। वस्तुतः वैदिककाल में अध्यात्म एवं भौतिकता का सुन्दर सामञ्जस्य था, किन्तु समय के साथ भौतिकता मानव के ऊपर प्रभावी होती गयी। अतः हमें अपनी शिक्षा के अन्तर्गत मानव मूल्यों का प्रशिक्षण बाल्यावस्था से देने की आवश्यकता है। यदि मनुष्य के अन्दर सत्य, अहिंसा, प्रेम, विनम्रता, दया, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादि मानवमूल्य संस्कारित नहीं होंगे तो एक स्वस्थ, सुखी और शान्त मानव समाज का निर्माण नहीं हो सकेगा। शिक्षक को अपने छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास करने के लिए उन मूल्यों पर स्वयं चलना होगा ˙ क्योंकि अपने जीवन में मूल्यों का, जिन अन्तर्वेशन करने के पश्चात् ही उनका प्रकटीकरण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। मूल्यों के प्रति स्वयं आस्थावान् रहकर ही आधुनिक शिक्षक विविध पक्षों में छात्रों के लिए मूल्य निर्माण का कार्य करने में समर्थ हो सकता है। आज के शिक्षक को 'धुरी' बनना होगा, जिस पर समाज की समस्त क्रियायें गतिमान होंगी। उसका व्यक्तित्व समाज का ह्रदय–स्थल होगा, जिससे वह सम्पूर्ण समाज के लिए वह कार्य कर सके, जो वैदिक शिक्षक व्यष्टि और समष्टि की सर्वाङ्गिण उन्नति के लिए करता था।

31

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह

डॉ. नीलम त्रिवेदी

विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, दयानन्द गर्ल्स कॉलेज, कानपुर (उ.प्र.)

वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मानव निर्माण था। मानव निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है जो केवल अपने लिये नहीं अपितु समाज एवं देश के लिये अपना सर्वस्य समर्पित करने के लिये सचेष्ट हो। वर्तमान में शिक्षा

के उद्देश्य का निर्धारण बाजार की उपयोगिता को देख कर सुनिश्चित किया जा रहा है। देश में संसाधनों की कमी नहीं है कमी है सृजन क्षमता में। सुपात्र सृजन में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था विफल है। वैदिक शिक्षा में पात्र सृजन हेतु मुख्य रूप से तीन प्रणालियाँ प्रचलित थीं। जिसमें प्रथम 'श्रुति' कहा गया है। इसमें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में ज्ञान का संचरण मौखिक रूप से होता था। शिक्षा की द्वितीय प्रणाली मनन कही गयी है। इसके अनुसार छात्र प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन करता था तथा विभिन्न विधियों के द्वारा गुरू प्रदत्त ज्ञान को अपने जीवन में अपनाता था। तृतीय प्रणाली है निदिध्यासन, जिसमें छात्र स्वयं विभिन्न उपायों से सत्य का साक्षातकार करता था, और जीवन में सत्य की उपयोगिता समझता था।

तीनों ही पद्धतियाँ वर्तमान में प्रायः समाप्त हैं। शिक्षा का ढाँचा अब न तो परम्परागत रहा है और न ही वैदिक प्रणाली का आलम्बन लिया जा रहा है। ज्ञान का विस्फोट हो चुका है। सभी सूत्र पकड़ने में बड़े से बड़ा विद्वान् अपने को असमर्थ पा रहा है। जानकारी और तथ्यों का संग्रहण ही शिक्षा नहीं है। इसकी गहराई तक मनन पूर्वक जाने से ही हम इसे प्राप्त कर सकते हैं। भविष्य की शिक्षा प्रणाली में हमें अपनी उज्जवल परम्पराओं का समायोजन करना तथा वर्तमान शिक्षण व्यवस्था से समन्वय स्थापित करना है 'ज्ञानं तृतीय मनुजस्य नेत्रं रमस्तत्वार्थीविलोकदक्षम्'।

32

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में वैदिक नीतियुक्त शिक्षा की उपादेयता

डॉ. पूनम घई

एसोशिएट प्रोफेसर, आर.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, धामपुर (बिजनौर)

वैदिक वाड्.मय में सम्पूर्ण मानव जाति के उद्धार के लिए अनेक दिशा–निर्देश मिलते हैं। वैदिक ऋषियों का लक्ष्य मिथ्या के बदले सत्य को, निऋति के स्थान पर ऋत को एवं खण्डित तथा ससीम जीवन के बदले समग्रता तथा असीमता को लाकर मानवीय आत्मा को मृत्यु की अवस्था से अमरता की अवस्था में पहुँचा देना था। वेदों में प्रायः ऐसी शिक्षा पर बल दिया गया है जिससे अज्ञान से मुक्ति तथा मोक्ष प्राप्त होता है। पाश्चात्य नीतिशास्त्रियों की समस्याओं का मुख्य प्रयोजन ऐहिक जीवन की व्यवहारिक समस्याएँ हैं; जबकि वैदिक नीतिशास्त्र का अधिकांश सम्बन्ध पारमार्थिक चिन्तन से रहा है। नैतिक शिक्षा का लक्ष्य मानव कल्याण है। वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य केवल अविद्या के शिक्षण का है। आज की शिक्षा हमें फैशन में रहने को बाध्य करती है। आज की शिक्षा का प्रमाण–पत्र हमारा बाह्य बनावटी आडम्बर मात्र है। इसके फलस्वरूप समाज में भ्रष्टाचार, अशान्ति, चोरी–डकैती, हिंसा, आतंकवाद इत्यादि दुष्प्रवृत्तियों का प्रचार–प्रसार हो रहा है। इन आपराधिक प्रवृत्तियों का द्रुतगति से बढ़ना, आर्थिक व सामाजिक अपराधों का आधिक्य विश्व अथवा राष्ट्र के विकास का नहीं अपितु पतन का द्योतक है। इसीलिए आज हमें वेदों में प्रकाशित नीतियुक्त शिक्षा को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित करना आवश्यक हो गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में इसी पर विचार–विमर्श किया गया है।

33

New Strategies to Inculcate Ethics and Morality from the Vedic View of Education

Mr. Prashant Bhardwaj

Principal Consultant-IT Vision360 Gurgaon

In last 60 years after Independence the objective of education in Indian society changes from the 'Education for Character Building to Education for Development' and this leads to loss of moral and ethical values. We join the race of how to grow richer, rather to develop a socio- economic system permits equitable distribution of wealth and production. The present system of education is ignorant towards our rich Indian intellectual tradition, culture and lack of spirit of *Bharatiyata*. Challenges we are facing as a

whole are excessive population growth, extreme poverty, increasing number of families below poverty line, a widening economic gap between rich and poor sections, rising inflation, capital flight, rising unemployment, corruption and lethargy in government offices leading to worsening of government administration, loss of moral and ethical values in all sections of the society, wide spread corruption, indifference towards nationalistic commitments, brain drain and scarcity of resources.

To correct the current erroneous system we need to adopt new strategies of education based on Vedic views and principle to fulfill the goal of human life. The present paper highlights how new strategies recommended here will take us to the journey from the Vedic Infrastructure, the Indic Weltanschauung or *Darshana*-The Sad *Darshana*s, the Indic approach to creating knowledge – Vedic episteme or *Pramana*, the concepts of *Shunya* and Infinity, the astronomical heritage, the nature of the mathematics, and the Indian approach to history in current perspective. Today we need to learn from the glorious past and Indian intellectual traditions to inherit and enrich the ethical and moral values to the coming generation.

34

वैदिक शिक्षा प्रणाली में आन्वीक्षिकी पद्धति की प्रासंगिकता

डॉ. प्रशान्त सिंह

प्रवक्ता, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व, दीप निकेतन महाविद्यालय, करहाँ, मऊ

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के ही माध्यम से सम्भव माना जाता रहा है। वेदों की महत्ता किसी से छुपी नहीं है। वेद वह दिव्य ज्ञान एवं विज्ञान का भण्डार हैं जिसके माध्यम से आध्यात्मिक, भौतिक एवं व्यावहारिक जीवन के सभी पक्षों के ज्ञान को अन्तर्निहित किए हुए हैं। शास्त्र एवं विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है और शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। इसीलिए ज्ञानोद्भव का आधार तत्त्व वेद शास्त्र एवं विवेक माना जाता है। 'वैदिक इण्डिया' में पावगी महोदय ने लिखा है कि वेद सम्पूर्ण ज्ञान का आदिस्रोत है, ईश्वरीय ज्ञान का प्रधान आधार है। मैकक्रिण्डल ने सिकन्दर के आक्रमणों पर लिखी पुस्तक *'इनवेंशन आफ इण्डिया बाई अलेक्जेण्डर द ग्रेट ऐज डिस्क्राइब्ड बाई आर्यन'* में लिखा है कि जब भारत में सिकन्दर आक्रमण करने के लिए निकला तब गुरु अरस्तु ने आदेश दिया कि वहाँ से लौटते समय दो उपहार ले आना, एक था गीता, दूसरा दार्शनिक संत। मुगलकालीन विद्वानों में दाराशिकोह, जो भारतीय वैदिक ज्ञान से अत्यधिक प्रभावित था, उसने भगवत् गीता, योगवशिष्ट, वेदों का संकलन एवं सिर्र–ए–अकबर अर्थात बावन उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया। दयानन्द सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, जार्ज बनार्ड शा, अरविन्द घोष तथा डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन इत्यादि विचारकों ने वेदों की महत्ता को अपने दैनिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन करने में वरण किया।

वेद एवं वैदिक साहित्य की आज तक अनेक प्रकार से व्याख्या हो चुकी है। वेद मंत्रों के अनेक पहलुओं को आधार बनाकर अनेकानेक अन्वेषण हो चुके हैं फिर भी इसके ज्ञान की इति नहीं है। यही कारण है कि इसके अन्तर्निहित ज्ञान–विज्ञान, तर्क एवं दर्शन का अन्वेषण निरन्तर गतिमान है। वर्तमान युग संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा का युग है। आज की शिक्षा अधिकार, बाज़ार एवं व्यापार का रूप धारण करती जा रही है। शिक्षा सूचनात्मक होने के कारण आध्यात्मिक एवं भौतिक विचारों में अन्तर्द्वन्द्व तथा वैचारिक संघर्ष भी हो रहा है। ज्ञान–विज्ञान तथा धर्म के मतान्तर में शिक्षा एवं समाज तथा धर्म में सहिष्णुता के लिए आन्वाक्षिकी (तर्क एवं दर्शन) की महत्ता है। वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक तर्कसंगतता के द्वारा मानव के चरित्र, व्यक्तित्त्व एवं सामाजिक उत्तरदायित्त्वों के निर्वहन हेतु आन्वाक्षिकी–पद्धति को व्यापक एवं व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है। वैदिक शिक्षा में आन्वाक्षिक–पद्धति पर सारगर्भित एवं तथ्यपरक विश्लेषणात्मक अध्ययन शोधपत्र में प्रस्तुत किया जाएगा।

35
अथर्ववेदीय नैतिकशिक्षा की आधुनिक प्रासङ्गिकता

डॉ. प्रयाग नारायण मिश्र

प्राध्यापक, संस्कृत–विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

वैदिक साहित्य और संस्कृति की स्निग्ध रश्मियाँ अनादि काल से ही अखिल भूमण्डल को आलोकित तथा ऊर्जस्वित करती रही हैं। अखिल ब्रह्माण्ड की सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा सार्वनिष्ठ वैदिक संस्कृति विश्व की समस्त संस्कृतियों का मूल है। *'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'* इत्यादि रूप में वेदों में बहुशः प्रोक्त इसी भारतीय संस्कृति को सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय अर्थात् स्वीकरणीय बताया गया है। जिस चारित्रिक श्रेष्ठता को वैदिक संस्कृति का मूल स्वीकार किया गया है उसे अधिगत करने हेतु नैतिकता, शील तथा सदाचार परम आवश्यक हैं। चारित्रिक श्रेष्ठता आत्मबल का प्रमुख हेतु है। आत्मबल के लिए नैतिकता तथा सदाचार अपरिहार्य हैं। अतः नैतिकता तथा सदाचार ही चारित्रिक उत्कर्ष के आधार हैं इसीलिए वैदिक युग में नैतिकता और सदाचार के प्रबल प्रकर्ष का प्रचुर प्रचार किया गया। समाज में नैतिकता तथा सदाचार का प्रबन्धन–नियमन तथा व्यवहार प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से ही इन समस्त दायित्वों के अधिष्ठातृ देवता के रूप में सर्वथा उपयुक्त वरुण देवता की सुदृढ़ सङ्कल्पना की गयी है। वरुण स्वयं ही धृतव्रत है। ऋतस्पृश तथा ऋतवृध अग्नि देवता भी सुपथ–प्रवर्तक प्रेरक पुरोहित है। वेदों का ऋत सिद्धान्त तत्कालीन सत्यनिष्ठ, अनुशासनप्रिय, नैतिकता तथा सदाचार से ओतप्रोत समुज्ज्वल समाज का प्रतिनिधित्व करता है। ऋत से सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होकर नियन्त्रणपूर्वक विस्तार को प्राप्त करता है। सत्यस्वरूप इसी ऋत से स्वर्गाप्ति–पर्यन्त समस्त फलों का कथन वैदिक वाङ्मय में प्रोक्त है। *'ऋतेनैव स्वर्गं लोकं गमयति'* इत्यादि ब्राह्मण वाक्य भी इसी तथ्य का प्रवर्तन करते हैं, इसीलिए सूर्य और चन्द्र को आदर्श मानकर आदर्श जन सन्मार्ग पर चलने की कामना करते हैं। *'अग्नेनय सुपथा राये'* तथा *'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'* इत्यादि रूप में की गयी कामना भी इसी नैतिकता तथा सदाचार से युक्त शिक्षा की पोषिका है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, द्यूत, मद्यपान, असत्यभाषण तथा पूर्वोक्त दुर्व्यसनों तथा दुष्प्रवृत्तियों में संल्लिप्त पापाचारियों से दूर रहकर जिस मर्यादासप्तक का समुल्लेख वैदिक संहिताओं में प्राप्त होता है। उससे नैतिकता तथा सदाचार का पक्ष प्राबल्य को प्राप्त करता है। नैतिकता तथा सदाचार के इसी अमृत शाश्वत प्रभाव का उत्तम उत्कर्षपूर्ण उत्स का निष्यन्द प्रवाह श्रुत्यनुगन्त्री स्मृतियों तथा वेदोपवृंहण वाङ्मय में अखिल विश्व का पथ प्रशस्त करते हुए देखा जा सकता है। 'नैतिकता तथा सदाचार की भावना से ओत–प्रोत चिन्तन मन्दाकिनी का वैदिक–प्रवाह पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण में संलग्न गतानुगतिक आधुनिक समाज के लिए कितना प्रासङ्गिक तथा उपादेय है, इसे अथर्ववेदीय कतिपय उद्धरणों के विशिष्ट आलोक में अन्वेषित करने का लघु प्रयत्न प्रस्तुत शोध–पत्र में किया गया है।

36
मूल्यपरक शिक्षा : वैदिक चिन्तन एवं आधुनिक संदर्भ

डॉ. पुष्पा मलिक

एसो. प्रो./अध्यक्ष–संस्कृत, भ. आर्य कन्या स्ना. महाविद्यालय, लखीमपुर, खीरी (उ.प्र.)

'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति 'शिक्ष्' धातु से भाव में 'अ' एवं स्त्रीत्वबोधक 'टाप्' प्रत्यय के संयोग से हुई है। 'शिक्ष्' धातु अध्ययन, अधिगम, विद्याभिग्रहण अर्थात् ज्ञानार्जन अर्थ में प्रयुक्त होती है। ज्ञान से तात्पर्य केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं है, अपितु किसी भी विषय, वस्तु आदि के सम्बन्ध में सम्यक् जानकारी प्राप्त करना ज्ञान है। मूल्यपरक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है, जो विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का विकास कर उसे सच्चे अर्थों में मानव बना सके, जिससे शिक्षा के मुख्य उद्देश्य– वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास को प्राप्त किया जा सके। अब प्रश्न उठता है– मूल्य क्या हैं? मूल्य वे आचार संहिताएँ हैं, वे सिद्धान्त हैं, जिनको स्वीकार करके मानव–जीवन सुव्यवस्थित, उन्नत एवं सार्थक बन जाता है। ये मूल्य मानव का मार्गदर्शन करके उसके जीवन को प्रशस्त करते हैं, उसे सम्बल प्रदान करते हैं तथा आत्मज्ञान से परिपूर्ण बनाते हैं। वैदिक काल में समाज को विकसित करने के उद्देश्य से विद्यार्थियों को

मूल्यपरक शिक्षा दी जाती थी। आश्रमों एवं गुरूकुलों में आचार्य उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ ही उनमें कर्त्तव्य की भावना जाग्रत कर लोक–कल्याण के लिए प्रेरित करते थे। वैदिक मान्यता थी कि सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, विश्वकल्याण, विश्वबन्धुत्व, धार्मिक आस्था, सदसद्विवेक, इन्द्रिय–संयम, सन्तोष, त्याग, धैर्य, शान्ति, अपरिग्रह आदि मूल्यों को आत्मसात् करने से व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास होता है। वैदिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास था, जिससे वह स्वयं परिष्कृत एवं समुन्नत होकर समाज को भी सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करता था। तत्कालीन ऋषियों की मान्यता थी कि विद्यार्थी–जीवन में चारित्रिक विकास का पर्याप्त अवसर होता है। इसीलिए तो सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय चरित्र को उज्ज्वल करने वाले प्रेरक भावों एवं विचारों से अभिव्याप्त है।

वर्तमान समय में व्यक्ति इतना भौतिकतावादी, धनलोलुप, व्यावसायिक दृष्टिपरक हो गया है कि उसके लिए मानवीय मूल्यों का किंचित् भी महत्व नहीं रह गया है। विश्व में सर्वत्र अराजकता, शत्रुता, राग–द्वेष आदि का वातावरण दृष्टिगत हो रहा है। ऐसे विषम समय में वैदिक मूल्यपरक शिक्षा की अनिवार्यता अनुभूत की जा रही है क्योंकि इसी प्रकार की शिक्षा के द्वारा हम, हमारा समाज, हमारा राष्ट्र एवं समस्त विश्व सर्वांगीण उन्नति कर सकेगा।

37

Global Issues and Vedic Views on Ethics For Scientific and Technical Personnel

Prof. (Dr.) Ram Gopal

President, WAVES, Jodhpur Chapter

Engineering ethics is the study of the moral issues and confronting technical personnel and organizations engaged in various R&D activities. A R&D scientist's product or project goes through various stages of conception, design, development and manufacture followed by testing, trials, quality assurance, sales and service. Zero – defect management and guide lines of ethical committee are required to be strictly followed for development of quality products on sustainable basis. In spite of this a variety of moral issues have drawn our attention in various engineering disasters such as the Challenger Explosion, Chernobyl Th` Mile Island and Japan's Tsunami accidents at the nuclear plants, Union Carbide gas plant in Bhopal, chemicals depleting, ozone layer, pneumoconiosis, acid rain, oil spillage in seas, environmental pollution, rains and landslide in Uttrakhand etc.

The world is suffering by not following ethos and values narrated in Vedic texts. The scientists and technologist have an important role in bringing this change by promoting global oriented morality, ethical codes, moral education and implementing appropriate international laws of common interests of human beings in order to preserve all life on earth with Vedic concept of '*Sarvajan Hitay, Sarvajan Sukhay*'.

38

वैदिकवाङ्मये मूल्यपरकशिक्षायाः स्वरूपं, तस्या आधुनिकसन्दर्भे प्रासंगिकता

डॉ. राम सुमेर यादव

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

'*सर्वज्ञानमयो हि वेदाः*' इति समृद्धसाहित्यरूपेण शिक्षायाः वैभवं निधाय विलसन्ति वेदाः। ज्ञानविज्ञानयोः किमपि मूल्यमेतादृशं नैव विद्यते यत वेदेषु न स्यात्, अपितु विश्वस्य सर्वे विद्वांसः विचारकाः चिन्तनशीलपराः वेदेषु सन्निहितज्ञानेन प्रभाविताः संजाताः। मानवानां कृते निर्विवादेन सर्वस्वीकृतवेदेषु ज्ञानविज्ञानयोः महनीयो हि आलोकः सम्भृतः वर्तते यस्य आधुनिके काले प्रासंगिता विद्यते। भारतीयपरम्परायां वेदाः ईश्वरीयवाणीरूपेणांगीक्रियन्ते। वेदाः अपौरूषेयाः। विविधमूल्यानां कृते वैदिकऋषयः सावधानाः चैतन्यसंयुताः दृश्यन्ते। तेषां शिक्षायाः उद्देश्यं सार्वभौमिकं वर्तते। वैदिकशिक्षा मानवानां

अन्तर्निहिताः मूलप्रवृत्तयः परिष्कर्तुं सक्षमा वर्तते। वैदिकशिक्षा ऐहिकं पारलौकिकच अखिलं निःश्रेयसं सिद्धिकर्त्रीरूपेण तिष्ठति। वैदिकशिक्षा मानवानां कृते जीवनोपयोगी, सार्वकालिकी तथा जीवनमूल्यानां आत्मसात्कर्तृत्वादमूल्या। वेदेषु सर्वत्र हि आध्यात्मिकतायाः भौतिकजीवनस्य चोत्कर्षहेतवे विधानानि प्रस्तुतानि। बुद्धेः सम्बर्धनार्थं बुद्धिमनसोः कृते सत्प्रेरकस्वरूपस्य भगवतः भास्करस्य सूर्यस्याभ्यर्चना गायत्रीमन्त्रेण ऋग्वेदे यजुर्वेदे तथा च सामवेदे प्राप्यते।

एवमेव शिक्षायाः कृते मानवीयमूल्यानां बहुशः प्रतिपादनं विद्यते आधुनिके काले तस्याः शिक्षायाः प्रासंगिता च विद्यते। विवादानां मूले कटुवचनमेव भवन्ति चेत मधुरं कल्याणकारिणं सम्भाषणं क्रियते जनैः, विवादसंघर्षयोः स्थानं नैव तिष्ठति। वैदिकवाङ्मये मानवानां व्यक्तित्वस्य सर्वांगीणविकासार्थं सर्वत्र परिलक्ष्यते। कस्यचिदपि जनस्य सर्वश्रेष्ठमानवत्वस्य मूल्यांकनं तस्य वैयक्तिकसमाजिकजीवनयोः पृष्ठभूमिमाश्रित्य विधीयते। वैदिकवाङ्मयं व्यक्तित्वनिर्माणेन सह जनानां सामानिकपरिवेशमपि सुदृढीकर्तुं उत्तमं मार्गं प्रशंसति। एवमेव त्यागपूर्णभोगः कर्त्तव्यपरायणता, अहिंसा, शुद्धाचरणं, सामाजिकविकासः, सर्वहितभावना, दाम्पत्यजीवनादर्शः, सत्यं, दानशीलता, निरातंकवादादीनां शिक्षा वेदेभ्यः समुपलभ्यते पूर्णा सामग्री शोधपत्रे प्रस्तोष्यते।

39

सामवेदे नैतिकचिन्तनम्

डॉ. रामराज उपाध्याय

निदेशक, पौरोहित्यप्रशिक्षणपाठ्यक्रम, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम् नवदेहली

सामवेदस्य प्रथमं मन्त्रमस्ति *'अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये निहोता सत्सि बर्हिषी'*, अस्मिन् मन्त्रस्य भाष्ये देवानां मानवानांच कल्याणाय आवाहनं कृतः। वस्तुतः अस्मिन् सर्वाणि हवनीय द्रव्याणि विश्वेषां जनानां कल्याणाय प्रदीयते। अत्र प्रच्छिन्नरूपेणैवं प्राप्यते यत्किमपि भवन्तं दीयते तत् सर्वेषां कल्याणाय विद्यते। यथा अत्र हविः अग्नौ प्रदीयते तर्हि अस्यार्थमेव नास्ति यत् केवलमस्माकं वीतये रक्षणाय इयं हविर्विद्यते। अपितु देवेभ्यो हविः प्रदानाय वयं हविपदार्थं प्रदामहे। अस्यार्थं नैतिकमस्ति। अपरैका शिक्षा अत्र प्राप्यते यस्य यद्दायित्वमस्ति तत्करोतु। स्वकीयस्य दायित्स्यानुपालनं विद्यते नैतिकतायाः प्रथमं सोपानम्। इदानीं जनाः स्वाधिकारस्य प्रायशः चिन्तनं कुर्वन्ति परं च दायित्वबोधः यदा न भविष्यति तदा नैतिकता न आगमिष्यति। सामवेदस्यास्मिन् मन्त्रे वीतये इति शब्दः हविषां चरुपुरोडाशादीनां भक्षणाय व्यक्तं करोति। अत्रास्ति अग्नेः अधिकारः हविरादिपदार्थानां भक्षणस्य। परंच सा हविः यस्य देवस्य विद्यते तस्य कृते प्रदेयमिति दायित्वमस्ति। स्वकीयस्य दायित्वस्य निर्वहणमस्ति नैतिकता। सामवेदे नैतिकतायाः प्रभूतस्थानमस्ति। विशदरूपेण शोधनिबंधे प्रस्तोष्यामि।

40

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. रीमा सिन्हा

अध्यक्ष, इतिहास विभाग, बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रूड़की

भोग संस्कृति ने विश्व के आध्यात्मिक गुरू कहे जाने वाले भारत को तथाकथित शिक्षित कहे जाने वाले युवाओं का ऐसा समूह प्रदान किया है, जिन्हें शिक्षा और नैतिकता शब्दों के अन्तर्निहित अर्थ मालूम ही नहीं है। आज सरस्वती *'पावकाः नः सरस्वती '* (ऋ. सरस्वती सूक्त) पवित्र करने की क्षमता खो बैठी है। यद्यपि यह सच्चाई है कि आज की शिक्षा ने मनुष्य के भौतिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है, आज की सभ्यता की नींव विज्ञान और प्रौद्योगिकी है लेकिन इसने मनुष्य के हाथ में संहार, अनैतिकता, संशय, छल, भावनाशून्यता जैसे उपादान सौंपे है। कभी जो शिक्षण संस्थान समाज का लघुरूप थे जहाँ उसकी समस्याओं के समाधान के साथ–साथ, मानव मूल्यों का परीक्षण और निर्धारण हुआ करता था उन्हीं में आज अपसंस्कृति फल–फूल रही है। वैदिक साहित्य आज की विषम परिस्थितियों से मुक्ति का मार्ग दिखाने में सक्षम है।

'ज्ञान तृतीय मनुजस्य नेत्रम्' (ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है।), *'नास्ति विद्या समंचक्षु'* (विद्या के समान कोई चक्षु नही) *'सा विद्या या विमुक्तये'* (शिक्षा मनुष्य को उन्मुक्त करती है, उसके बन्धनों को हरती है।)*'विद्या विहीनः पशुः'* (विद्या

विहीन व्यक्ति पशु के समान है।) *'विद्या सर्वस्य भूषणम्'* (विद्या सबका आभूषण है।) *'विद्या ददाति विनयम्'* (विद्या विनम्रता प्रदान करती है।) 'विद्ययामृतश्नुते' (विद्या द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।) जैसे सारगर्भित कथनों द्वारा वैदिक आचार्यो व मनीषियों ने शिक्षा को जीवन से जोड़ा, सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन को बराबर महत्व दिया। संसार और मोक्ष दोनों का शिक्षण आवश्यक है, यथा–*'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विद धनम्'* (यजु. 40.1) एवं *'अन्धतमः प्रविशयन्ति येऽविद्यांमुपासते ततो भूयइव ते तमोयऽड विद्याया रताः।'* (यजु. 40.12) धर्मशास्त्रों में आचरण की जो बात कही गई है वही नैतिकता है जिससे समाज में प्रेम, सहयोग, सौहार्द्र, बन्धुत्व और मानवता का समावेश हो, वैदिक साहित्य से मनुष्य को मनुष्य बनाने हेतु नैतिक ज्ञान की अनिवार्यता का भी पुरजोर समर्थन देखने को मिलता है। आज भी समाज की विषमताओं को दूर करने हेतु ग्रहणीय है–*'सत्यंवद। धर्मचर। स्वाध्यायान्न प्रमदः। आचार्य देवो भव।'* (तै. उप. 1.11)। शोधपत्र में विस्तृत रूप से वैदिक साहित्य में उपलब्ध शिक्षा और नैतिकता के संदर्भो का मंथन करते हुए यह प्रयास किया गया है कि इन दोनो वैदिक विशिष्टताओं द्वारा शिक्षा सही अर्थो में कुछ सिखायें, मूल्यों से जुड़े और 'मनुर्भव' अर्थात् हे बालक 'तू उत्तम विद्या को प्राप्त करके मनुष्य के लिए उपयोगी।

41

यजुर्वेदीय शिक्षा एवं नैतिकता : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. रेखा शुक्ला

एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष, संस्कृत, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज कानपुर (उ.प्र.)

'असतो मा सदगमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय' (शतपथ ब्राह्मण 14.1.1.30) – प्रस्तुत वाक्य वैदिक ऋषियों की सर्वोदय एवं सर्वकल्याण की भावना को अभिव्यक्त करता है। कोई भी देश अथवा इतिहास अपनी प्राचीन परम्पराओं तथा इतिहास से पृथक् रहकर जीवित नहीं रह सकता। किसी भी राष्ट्र का कल्याण एवं उन्नयन उसकी गौरवमयी परम्पराओं में निहित है। वैदिक साहित्य में सूत्रात्मक–पद्धति से समग्र जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनेक शिक्षाएँ प्राप्त होती है। यथा– *'सत्यं वद, धर्मं चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः'*। भारत देश के निवासियों का अपने सर्वाङ्गीण विकास का इतिहास एवं परम्परा है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक गतिविधियों की सम्मानास्पद वैज्ञानिक विचारधारा है। इसे वर्तमान युग की आवश्यकताओं से संयोजित अवश्य किया जा सकता है। हमारी वर्तमान शिक्षा–पद्धति भी हमारी प्राचीन शिक्षा–पद्धति से समृद्ध होनी चाहिए। अपनी भाषा, समाज, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति स्वाभिमान की भावना से ही प्राचीन शिक्षा–पद्धति के गुणों को समझा जा सकता है। वैदिक शिक्षा का *'आत्मवत्–सर्वभूतेषु'* का भाव ही वर्तमान समय के आतंक, हिंसा तथा अपराध का निराकरण करने में समर्थ है। आधुनिक भारतीय शिक्षाशास्त्रियों यथा– रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामिविवेकानन्द, श्री अरविन्दो, महात्मागांधी, महामना मदन मोहन मालवीय, सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि ने भी चारित्रिक उत्थान द्वारा व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना है। प्राचीन शिक्षा भी व्यक्ति के नैतिक गुणों के विकास पर बल प्रदान करती है। महर्षि मनु के शब्दों में – *'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः'* (मनुस्मृति 2/20)।

42

The Concept of Education in Upanisadic Era in Modern Context

Dr. Renu Pant

Department of Sanskrit, Mahila Vidyalaya Deg` College, Lucknow (U.P.)

The Vedic view on education aimed at the overall development of a person and set vey high standards of ethical and moral behaviour. Great store was set on education. *Upanisad*s provide a

comprehensive concept of Vedic education system. This paper tries to find the basic view on education based on the ten oldest *upanisad*s. Education systems essentially consist of trinity of the teacher, the pupil and the institution which also includes the curriculum and the methods of teaching. Parents and society also play a large role in this. So any assessment requires taking consideration of all these elements. The teacher in Vedic times, though a strict disciplinarian, was caring and affectionate and took charge of the overall development of the child to make him a useful member of the society. Truthfulness and sharing his knowledge with a true seeker were his traits. He was always trying to enhance his knowledge, was not arrogant and was frank to admit about spheres of his ignorance. The pupil had a keen desire for knowledge, was obedient to the teacher, asked for *bhiksya* to sustain themselves and to acquire humbleness, tended to the fire and livestock in the *gurukul*. They worked hard and studied hard. They were all called *brahmacaris* and had to practice abstinence from worldly pleasures. The educational institution was called *Acarya kula* where the pupil stayed with his teacher and his family. Normal period of stay was twelve years but could vary as per requirement.

There were two streams of knowledge- *Para* and *Apara* which can be translated as (a) knowledge of the Supreme Being and means of his realization and (b) knowledge related to Vedic rituals, science of speech, astronomy, mathematics, logic, ethics etc. which were useful in worldly matters and provided livelihood. The method of teaching aimed at enhancing the overall mental development of a pupil by arousing his curiosity and answering his queries leading the pupil from the known to the unknown. At the time of graduation he was given strict instructions about conducting himself as a responsible and productive member of the society. Thus education was a lifelong quest for truth and self realization where the teacher, pupil, scholars and society made their respective contribution. The ideals embedded in the Vedic concept of education are as relevant today as at the time of their inception.

43
Education and Morality

Dr. Richa Sikri

Assistant Professor, History, M.L.N. College, Radaur (Haryana)

Education is which leads a person from unreal (untruth) to real (truth), from darkness to light and from death to immortality (*Brihadaryanyakopnishad I.3.28*). In Vedic times education was considered important. Firstly, to get education it was important to learn alphabets as well as pronunciation of the alphabets as it was the first step to enter the vast field of materialistic and spiritual knowledge. Knowledge is of two kinds *Para* (spiritual) and *Apara* (materialistic). Secondly, education was essential to repay the *rina*s or debts. Third, the *sansakara*s which were performed to enunciate the education further proves the importance of education. Moreover during this time one had to spend first twenty five years of one's life in the pursuit of getting education while staying at *gurukula*. In those years one did not get only education but also learn the lessons of moral values, good behaviour and character building. Rather than getting knowledge it is more important to be good as *Mahabharata* is also of the view that 'he alone is learned who is righteous'. So in this period besides getting education it was more important to imbibe truth, non-violence, *brahmacharya*, equal behaviour to all, self-reliance, fearlessness, politeness and compassion. On the whole the aim was 'simple living and high thinking'. Due to stress to get good marks, cases of suicides, depression and negative tendency in increasing day by day .Though education is not directly related to moral values and good behaviour but it is supposed that a educated person will act in certain good way, but that qualities are totally neglected. Moreover in present times too much use of gizmos, computers and smart phones is further affecting the physical as well as mental health of the students.

44
Position of Woman in the Field of Vedic Literature : A Study

Dr. Sabita Devee
Associate Professor, Pandu College, Guwahati (Assam)

Vedas are the storehouse of all kinds of knowledge particularly in education with an aim to impart its moral value to the society. We may refer to all four Vedas as well as *brahmana*s, *upanisad*s, *sutra* literature as well as *smriti* literature. Woman occupies a high position in the field of education during the Vedic era. Reflections of moral values were seen in the society too.

45
पृथ्वी–सूक्त में राष्ट्रभावना

डॉ. सारिका मिश्रा
वाराणसी

संसार आज ऐसी समाजिक व्यवस्था की खोज में है, जिसमें उसे शान्ति मिल सके। अमीरी–गरीबी का संघर्ष न हो और सभी मानवमात्र समान–भाव से उन्नति करते हुए आनन्दमय जीवन बिता सकें। अथर्ववेदीय पृथ्वी–सूक्त के अध्ययन से उसमें निहित राष्ट्रीय भावना तथा राजा के राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का ज्ञान होता है। पृथ्वी–सूक्त में समाजिक व्यवस्थाओं, सद्‌गुणों एवं सत्कर्मों का समन्वय दिखाई देता है। ये हमारी सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, आचार मर्यादाओं आदि का आधार है, जिसके अभाव में एक श्रेष्ठ राष्ट्र की कल्पना नहीं कर सकते। आज पाश्चात्य देश अत्यधिक भौतिक उन्नति करके भी अशान्ति और असुरक्षा का अनुभव कर रहे हैं। यदि भारत को इस अशान्ति से बचाना है तो उसे अपने स्वरूप को बनाये रखना होगा तथा विश्व–समुदाय को बचाना है तो वैदिक–समाज के आदर्शों का अनुसरण करके सामाजिक संतुलन स्थापित करना होगा। जातिवाद द्वेष, धृणा, छुआछूत, अशान्ति, ऊँच–नींच की भावना इत्यादि अनेक कुरीतियां छोड़कर शोषित वर्ग के साथ समानता का व्यवहार करना होगा।

पृथ्वी–सूक्त में राष्ट्र–भावना निहित है। उत्तम राष्ट्र की कामना पूर्ति के लिए योग्य शासक का होना आवश्यक है। अथर्ववेद के मन्त्र 12.1.15 में प्रार्थना की गई है कि सूर्य की किरणों के विस्तार के समान राजा को राष्ट्र का विस्तार करने वाला एवं प्रजा का पालक होना चाहिए। राष्ट्र की एकता राजा के गुणों पर निर्भर करती है। एक उन्नत राष्ट्र की कामना के लिए राजा को धैर्यशाली, सरल एवं मधुर होना चाहिए– *'ता नः प्रजा सं दुहतां समग्रा वाचो मधु। पृथिवी धेहि महयम्* (अथर्ववेद 12.1.16)। राजा का सर्वप्रमुख धर्म है कि वह अपने राज्य में रहने वाले मनुष्यों, पशुओं तथा क्षेत्रों की रक्षा तथा उनका पालन पृथ्वी की तरह करें। राजा का कर्त्तव्य केवल शान्तिकाल में प्रजा का पालन नहीं होता है, बल्कि उसका प्रधान कार्य युद्ध के समय या अपदाकाल में अपनी प्रजा का सभी उपायों से रक्षा करना भी है। यही राष्ट्र–भावना मानवजाति को आपस में जोड़ने का काम करती है न कि तोड़ने का।

46
Vedic View on Education

Dr. (Ms) Shakuntala Bora
Department of Philsophy, Gauhati University, Guwahati (Assam)

Vedic concept of education involves the broad arena of teaching and learning the entire gamut of life. The sentiment involved in educating and in receiving education is aptly depicted in the peace invocation: '*Om. May [He] protect us both. May [Brahman] bestow upon us both the fruit of knowledge. May we both obtain energy to acquire knowledge. May what we both study reveal the truth. May we*

cherish no evil feeling towards each other. Om Peace! Peace! Peace!' Education is expressed not just as achievement of knowledge but also as acquisition of excellence of character in the background of a harmonious relationship between teacher and student. Learning is not mere knowledge but it is supposed to lead one to strength and energy. In *Brihadaranyakopanisad* it is prayed that one may be led from darkness to light, from mortality to immortality. That education is not one-sided is also expressed by the statement of *Kathopanisad* '*Do not neglect study and teaching*.' It becomes clear from this that it is not enough to acquire knowledge; it has to be further combined with the capacity to communicate the same. Education implies an all round development of the individual. It teaches each person to respect his elders. In *Taittiriyopanisad* when it is invoked that one's parents, teachers and elders may be gods unto him. Yet at the same breath it suggests that devotion and respect does not imply blind following when in the next line it reads '*the works that are not blameworthy are to be resorted to, not the others. Those actions of ours that are commendable are to be followed by you, not the others.*'

47
Pharmacology in Rigveda : A Study

Dr. Shalini Shukla

Associate Professor, Sanskrit, Govt. P.G. College, Kotdwara

Vedas are the main source of unearthing a vast knowledge collected in them. 'Literature is the mirror of society'- is a very true saying regarding vedas. Vedas are not merely holy books guiding and teaching morality but their area of knowledge is effective in every realm of life. The first and foremost requisite of man is to lead a healthy life. A healthy body and role in a proper equilibrium can lead a progressive society. Being given to spiritual pursuit rather than worldly comforts. Vedas talk about inner and outer fitness of man. Ayurveda the *upveda* of Atharveda deals all the branches of health education viz diagnosis and treatment of ailments through medicine etc. We are indebted to our ancestors who were well aware and well accustomed to the importance of medicine. The whole '*Surta*' of Rigveda describes the uses and importance of medicine in day to day life. An elaborative study of physical and mental health will be presented through this paper. Rigveda is the main source of writing for this paper although other works of Vedic literature are discussed according to the context.

48
Global Unity in Vedic Education

Prof. Shashi Tiwari

Former Professor, Sanskrit, University of Delhi, & General Secretary, WAVES, India

The preservation and spread of national heritage and culture was one of the most important objects of Indian educational system. Besides being a source of illumination and self-fulfillment, it emphasized devotion to social duties and also laid stress on the promotion of happiness of mankind. The ancient educational system evolved its own appropriate method of study. Kautilya enumerates seven steps of Vedic study. The numerous subjects of study comprised all sorts of knowledge - material and spiritual. Similarity of all and unity among all human-beings is a very general concept inter-woven in the whole of the Vedic literature and later Sanskrit scriptures. By and large there were th` types of institutions for the spread of learning during later Vedic period. Debating circles or Parishad was one of them. Takshashila and Naalanda were two famous seats of learning in ancient India which contributed for the cause of global unity at their times. They attracted scholars and teachers from different parts of the country and abroad.

49

वेदकालीन शिक्षा और उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ. श्वेता चौरसिया

प्रवक्ता, संस्कृत, अभिनव प्रज्ञा महाविद्यालय चौडगरा, फतेहपुर (उ.प्र.)

पुरातन आचार्यों ने ज्ञान को सुपवित्र वस्त्र माना है। वैदिक कालीन शिक्षा का वास्तविक स्वरूप ज्ञान वैदिक मन्त्रों से स्पष्ट होता है। ज्ञान से मनुष्य के अन्तः चक्षु खुल जाते हैं। उसे आध्यात्मिक तथा अलौकिक प्रकाश मिलता है, जो जीवन का लक्ष्य है और इसी लक्ष्य की प्राप्ति में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण व विकास का सर्वप्रथम एवं सर्वोत्तम माध्यम शिक्षा है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी अमूल्य सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत को हस्तान्तरित करता चला जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि 'तुम्हारा अधिकार केवल कर्म पर है न कि उसके फल पर इसलिए तुम्हारे कर्मों के फल तुम्हारे कर्म की प्रेरणा नहीं होने चाहिए न ही तुम्हें निष्क्रियता से कोई मोह होना चाहिए'।

वस्तुतः हमारी शिक्षा का उद्देश्य भी ऐसा होना चाहिये, जिससे वर्तमान युग के मानव कर्म की महिमा को समझते हुये कर्तव्य की महत्ता को समझे। मनुष्य को मनुष्य बनाने वाले तत्त्वों में विद्या प्रथम तत्त्व है। विद्या ज्ञान की वह धारा है, जो व्यक्ति को विनयशील बनाती है। वैदिक काल से जिस विद्या की गहरी जड़ों को हमारे मनस्वी, वेदान्ती, ऋषि–मुनि सींचते आये हैं, आज विद्या की वह परम्परा विलुप्त हो रही है। अतः वर्तमान के इस बदलते परिवेश में वैदिक शिक्षा की परम्पराओं को बनाये रखने के लिए सभी को आगे आना होगा और अपने अमूल्य ज्ञान के भण्डार को समझना होगा।

50

शिक्षा व नैतिकता पर महर्षि दयानन्द का वैदिक चिन्तन

डॉ. (आचार्य) श्वेतकेतु शर्मा

बरेली

महर्षि दयानन्द का अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में अध्ययन–अध्यापन विषय का विस्तृत वर्णन है। ऋषि दयानन्द ने कहा है कि माता–पिता, आचार्यों का परम कर्तव्य है कि अपनी सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म एवं स्वभाव, रूपी आभूषणों को धारण कराना चाहिये। सोने, चाँदी, माणिक, मूंगा, आदि आभूषणों से मनुष्य की आत्मा सुभूषित नहीं हो सकती है। अपितु जो बाल वृन्दों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है, उनमें ही स्वभावतः सुंदरता, शालीनता, माधुर्य आदि गुणों का वास होता है। महर्षि दयानन्द के शैक्षिक चिन्तन में पठन–पाठन विधि में भी भारतीयता के दार्शनिक वेद, वेदांग ग्रन्थों के पठन–पाठन पर विशेष जोर दिया गया है। उन्होंने सम्पूर्ण ज्ञान का मूल बिन्दु भारतीय दर्शन को माना है।

अतः कहा जा सकता है कि आज की जो शिक्षा है वह मात्र अक्षर ज्ञान है, जो नैतिकता से रहित है। विज्ञान तो केवल भारतीय साहित्य व वेद–दर्शनों में है, जो वैज्ञानिक चिन्तन पर आधारित ऋषि द्वारा निर्मित है। इस कारण शिक्षा के विस्तृत ज्ञान के लिये वेद–वेदांगों के अध्ययन की परम आवश्यकता है जिससे इस देश का युवा–पंडित–ज्ञानी–वैज्ञानिक हो सके। ऋषि दयानन्द का शैक्षिक चिन्तन वैदिक साहित्य व नैतिकता पर आधारित है। वर्तमान शिक्षा में चरित्रहीनता का कारण भारतीय वैदिक दर्शन का अभाव है। यह कहा जा सकता है कि महर्षि दयानन्द का शिक्षा व नैतिकता पर जो चिन्तन है वह ही वैदिक व भारतीयता के अनुरूप है, उसको वर्तमान भारतीय शिक्षा के साथ समायोजित करना चाहिये तभी वर्तमान परिवेश में शिक्षारूपी ज्ञान का स्तर ठीक हो सकता है। उसके साथ बच्चों में प्रेमालाप, आत्महत्यायें, कामकुता, धन व भौतिकता में आसक्ति, माता–पिता के प्रति मान–मर्यादा का समाप्त होना, आधुनिक परिवेश में ज्ञान–विज्ञान से दूर जीवन जीने की लालसा बढ़ रही है। इनको रोक कर ही मानवीय मूल्यों पर आधारित भारतीय आदर्शों का समाज, राष्ट्र व परिवार का निर्माण हो पायेगा।

51
पृथ्वीसूक्त : वनस्पति और औषधियों का स्रोत

डॉ. स्मिता श्रीवास्तव

वाराणसी

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में अथर्वण ऋषि ने 'मातृभूमि' की वनस्पति और औषधियों के स्रोत के रूप में मनोरम व्याख्या की है। मानव की उत्पत्ति के पूर्व ही वनस्पतियों का प्रादुर्भाव हो गया था और वे सम्पूर्ण जगत् में अपना राज्य स्थापित कर चुके थे। जन्म से ही मनुष्यों का इन वनस्पतियों से सम्बन्ध रहा है। पृथ्वी सूक्त के वैज्ञानिक अध्ययन से स्पष्ट है कि तत्कालीन वनस्पतियों का विज्ञान क्षेत्र विस्तृत था। तत्कालीन लोगों का सम्पूर्ण जीवन वनस्पतिमय था। लताएं, वृक्ष आदि वनस्पतियों के रूप में प्रयोग की जाती थी। पृथ्वी का भेदन करते हुए उत्पन्न होने के कारण ही पृथ्वी इन वनस्पतियों और औषधियों की माता कही गयी है। अन्तरिक्ष में इनका विस्तार होने के कारण अन्तरिक्ष को इनका पिता कहा है। पर्वत आदि भी वनस्पतियों का स्रोत है क्योंकि सोमलता पर्वतीय क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। ये भूमिगत वनस्पतियों का ही प्रभाव है कि चेतन पृथ्वी कभी क्षतिग्रस्त नहीं होती है। वनस्पतियों को आग्नेय भी कहा जाता है। गृह निर्माण, आहार, विभिन्न उपकरणों, पात्रों, हवन समिधाएँ एवं चिकित्सा पद्धति के लिए वनस्पतियों का ही आश्रय लेना पड़ता है। ये वनस्पतियाँ प्राकृतिक आपदा में मौसम से भी सुरक्षा देने में उपयोगी है। इसी सूक्त में औषधियों का भी उल्लेख है। औषधियाँ गन्ध युक्त होती है। प्रार्थना है कि पृथिवी हमारे लिए विस्तृत हो और हमारे लिए समृद्ध बने (अथर्ववेद 12.1.2)। खेती से प्राप्त वनस्पतियाँ जैसे– गेहूँ, जौ आदि औषधि का काम करती हैं। इनका चूर्ण यज्ञ आदि में प्रयोग किया जाता था। गेहूँ का प्रयोग विष नाशक के रूप में करने का उल्लेख है।

52
Morality and Education in the *Satapatha Brahmana*

Ms. Suchitra Roy Acharyya

Department of Sanskrit, University of Calcutta, Kolkata (W.B.)

In the *Satapatha Brahmana* we get '*Acaryo garbhi bhavati hastamadhaya daksinam tritiyasyam sa jayate sabitrya saha brahmana iti*' (11.5.4.12). That means 'the teacher lays his right hand on the head of the pupil whereby he is impregnated by him. Within the third night he embryo issues out of the teacher and being taught the Savitri, obtains true Brahminhood.' While a student comes in touch of the teacher it seems a spiritual regeneration of a student. '*Daivyah prajastani mukhato janayate tata etam janayate*' (11.5.4). That means he is like a divine creature born from his teacher's mouth. By the spiritual significance of the ceremony of *upanayan* or initiation a student attains a new birth who undergoes *brahmacarya*. '*Garbho va esa bhavati yo brahmacaryyamupaiti*' (11.5.4.16). This *upanayana* or initiation ceremony is the prelude to student-life known as *Brahmacarya*. Through this initiation one starts an ethical life which is very much needed for a social being and society too. Human being must be alert about his duties. He should be conscious about the saying 'live and let live'. While we go through the S.B. we get a graphic picture of the initiated student's life who enters to the preceptor's residential institution where one has to obey the primary injunctions of the *Acarya* or teacher which are recorded there in. Some of these injunctions are: (i) From today you are *Brahmacari* i.e a student observing vows. (ii) Do your duties. (iii) Place fuel in the sacred fire. (iv) Be obedient to the teacher. (v) Do not sleep in the day-time. The whole of the third Brahamana of S.B. (11.3.3) deals with the rites and duties of a student-life. Here we find the germs of the detailed duties and rites of a student which we meet in the Sutra literature and smriti texts in the later period. S.B. says '*Dirghasatram va esa upaiti yo brahmacaryamupaiti'*. That means the student should approach the teacher in a submissive and humble spirit.

53

उपनिषदों में वर्णित नैतिक मूल्यों की आज के सन्दर्भ में प्रासंगिकता

डॉ. सुधा बाजपेयी

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ उ.प्र.

भारतीय परम्परा के अनुसार उपनिषद् नैतिक आदर्शो की जननी है। इसके नैतिक उपदेश इतने दिव्य है जिनके द्वारा मनुष्य शाश्वत सुख एवं निर्मल शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषद् मानवजीवन के लिए नैतिक शिक्षा की बार–बार प्रेरणा देते हैं कि– *'उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'* (कठोपनिषद्)। 'नैतिक' शब्द 'नीति' शब्द से आया है। 'नीति' शब्द नी (प्रापणे) धातु से अधिकरण अथवा करण अर्थ में क्तिन् प्रत्यय जोड़कर व्युत्पन्न होता है, 'नी' का अर्थ है 'ले जाना' मनुष्य को सत्य दिशा की ओर ले जाना ही नीति का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है– *'नयनान्नीतिरूच्यते'*। नयन व्यापार करता है– दुष्प्रवृत्तियों से सद्प्रवृत्तियों की ओर। वेदों में 'नीति' शब्द का अर्थ है– *'ऋजु नो वरूणो मित्रो नयतु विद्वान्'* (ऋग्वेद) अर्थात् मित्र, वरूण हमें कौटिल्य रहित नीति का सुफल दें।

भारतीय मनीषा ने आचार को ही प्रमुखता दी है– *'सर्वस्य तपसो मूलमाचार'* सदाचार और चरित्र एक दूसरे के पूरक है इसी प्रकार आचार, विचार और व्यवहार भी। वेदव्यास ने भी यही माना है– *'सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते'*। भारतीय चिन्तन आचार को ही विद्या प्राप्ति का साधन मानती है– *'आचारात् प्राप्यते विद्या'* आचार अर्थात् शिष्टाचार। वस्तुतः नैतिकता मानवता का सामान्य व्यावहारिक उचित विज्ञान है। वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद कहते है– *'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म'* अर्थात् वह कर्म जिससे इस लोक में अभ्युदय हो और परलोक में मुक्ति वह धर्म है। तैत्तिरीयोपनिषद् में नैतिक उपदेश का अमृत भरा पड़ा है– *'सत्यंवद, धर्मंचर, स्वाध्यायान्मा प्रमद'* अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में प्रमाद मत करों, माता पिता, गुरू, अतिथि के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करो। कठोपनिषद् में अतिथि–सेवा का महत्व विशेष रूप से दर्शाया गया है। कठोपनिषद् में नचिकेता जब यमराज के अतिथि बने, तो नचिकेता द्वारा तीन दिन तक उपवास रखने के कारण उन्होंने उससे तीन वर मांगने को कहा। इस उपनिषद् में माता पिता के प्रति पुत्र के कर्तव्य का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है। कठोपनिषद् में श्रेयस और प्रेयस दोनों मार्गो का उल्लेख है। इसमें श्रेय मार्ग ज्ञान, विद्या और मोक्ष का मार्ग है तथा प्रेय मार्ग अज्ञान एवं अविद्या का मार्ग है। इन दोनों मार्गों में बुद्धिमान पुरूष श्रेय मार्ग (आत्मज्ञान मार्ग) को अपनाकर सुख शान्ति का अनुभव करता है।

54

शिक्षा एवं नैतिकता का वर्तमान संकट और गीता में निहित समाधान

डॉ. सुखनन्दन सिंह

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

शिक्षा और नैतिकता का गहरा अंतर्सम्बन्ध है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व के सर्वोगीण विकास से है, नैतिक एवं आंतरिक विकास जिसका अहम् पक्ष है। भारत ही नहीं विश्व की किसी भी विकसित सभ्यता एवं संस्कृति का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास, शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा रहा है। श्रीमदभगवद्गीता में निहित शिक्षा दर्शन के आधार पर वर्तमान शिक्षा एवं नैतिकता के संकट को प्रभावी ढंग से निपटा जा सकता है और विद्यार्थियों की नैतिक पतन, बौद्धिक विभ्रम एवं मूल्यगत विसंगतियों की समस्या का आत्यांतिक समाधान किया जा सकता है। गीता में प्रतिपादित नैतिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा दर्शन स्वयं में वेजोड़ एवं सर्वांगीण है। आश्चर्य नहीं कि विश्वमनीषा ने हर युग में देश, काल, धर्म और मतों के भेदों को नकारते हुए गीता के सार्वभौमिक महत्त्व एवं शाश्वत दर्शन को खुले दिल से स्वीकारा एवं इसकी रुपाँतरणकारी गुणवत्ता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। प्रस्तुत शोध–पत्र में, गीता में निहित शिक्षा–दर्शन के आधार पर विचार प्रस्तुत किये जाऐगें, जिसके अंतर्गत वर्तमान नैतिक संकट के कारण, इसके समाधान और प्रायोगिक स्वरुप पर विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

55

वर्तमान मूल्य–संक्रमण और हिन्दी कविता : वैदिक चिन्तन के सन्दर्भ में

डॉ. सुमन सिंह

असि. प्रोफेसर, हिन्दी, दयानन्द गर्ल्स पी.जी.कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

नैतिक मूल्य व्यक्ति के आचरण को निर्देशित और मूल्यांकन करने के आदर्श मानदण्ड हैं। साहित्य का जीवन मूल्यों के साथ दोहरा सम्बन्ध है। एक ओर जहाँ साहित्य स्वच्छ दर्पण बनकर अपने समय के नैतिक मूल्यों को प्रतिबिम्बित करता है, तो दूसरी ओर उनकी मीमांसा करके उनका संशोधित रूप प्रस्तुत कर समाज के सदस्यों को नये मानव मूल्यों के निर्माण की प्रेरणा देता है। सामाजिक उन्नयन के लिए संस्कृति, सभ्यता आदि में जो निष्ठा देखी जाती है, उसका मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय ही है। वेद हमारे जीवन की वह आधारशिला है, जो हमारे स्वार्थ, लोभ, घृणा, कटूता, हठवादिता आदि का उन्मूलन कर प्रेम, सेवा, कर्त्तव्यनिष्ठा, समर्पण एवं उत्सर्ग का भाव सिखाता है। आज मूल्य–संक्रमण का युग है। जीवनमूल्यों की उपेक्षा से उपजने वाली समस्याओं से पूरा संसार त्रस्त है। इस संदर्भ में डॉ0 धर्मवीर भारती का चिंतन प्रासंगिक है कि *"आधुनिक संकट की प्रकृति का निरूपण करते हुय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यह केवल आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक संकट नहीं वरन मानव जीवन के मौलिक प्रतिमानों का संकट है। इसीलिए साहित्य के प्रसंग में इसका विश्लेषण अनिवार्य है।"* हिन्दी कविता में उन मूल्यों के बदलते आयामों का आकलन करना एक विनम्र प्रयास है।

भारतीय जीवन को सत्यनिष्ठ, संयत, उदात्त तथा औदार्य भावना से युक्त बनाने में वैदिक ऋचाओं ने बड़ी प्रेरणा दी है। अथर्ववेद की ये पंक्तियाँ प्रेम की उच्चतर भावना को निर्देशित करती हैं। इन पंक्तियों में दृष्टव्य है– *'समानी व आकूतिः समाना सहृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथां वः सुसहासति।* वैदिक कालीन समाज हो या हिन्दी कविता सुन्दर समाज की कल्पना का आधार दोनों में एक ही है। वैदिक समाज एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करता है जहाँ सभी समान हो सबके हृदय एक हो, कवि नागार्जुन भी कुछ ऐसी ही भावना रखते हैं– *'पुलकित तन हो मुकुलित मन हो, सरस और सक्षम जीवन हो। अन्नवस्त्रदा/सुखादा, शुभदा, प्राणों से भी बढ़कर प्यारी हिमकिरीटिनी।* वैदिक मूल्यों में प्रेम एक ऐसा तत्व है जो व्यष्टि व समष्टि दोनों को एक सूत्र में पिरोकर रखता है। *'सर्वे भवन्तु सुखिनः'* जैसी उदात्त भावना हिन्दी कविता में भी है– *'औरो को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ।* अतः मूल्य–संक्रमण के इस युग में वैदिक चिन्तन ही एक मात्र सही रास्ता है, जिस पर चलकर हम स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं।

56

शिक्षा और नैतिकता की वैदिक अवधारणा तथा आधुनिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. सुनीता जयसवाल

विभागाध्यक्षा–संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चकिया–चन्दौली (उ0प्र0)

वैदिक शिक्षा का व्यापक अर्थ इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार का अलौकिक उपाय बताना है। वृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार 'शिक्षेद्दमं दानं दयामिति' अर्थात् तत्कालीन शिक्षा में दम, दान और दया जैसे आत्मिक गुणों का प्रावधान सन्निविष्ट था। सामान्य अर्थ मे नैतिकता एक आन्तरिक भावना है। समाज जिसको उचित मानता है वह वस्तु या कार्य नैतिक कहलाता है और जिसे समाज अनुचित समझता है उसे अनैतिकता की संज्ञा दी जाती है। प्राचीन भारत में शिक्षा का आधारभूत उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक गुणों का विकास करना था। वैदिक कालीन शिक्षा नैतिकता पर आधारित थी। मानव जीवन में वैदिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों की आवश्यकता सृष्टि के प्रारम्भ से ही रही है। किन्तु आज के संघर्षपूर्ण और स्वार्थमय जगत् में वैदिक शिक्षा व नैतिकता के द्वारा ही कल्याणपथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। आज की भौतिक उपलब्धियाँ संसार में विनाशकारी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन दे रही हैं, मनुष्य अपनी मनुष्यता त्याग कर पशुता को ग्रहण कर रहा है। भैतिक सुखोपभोग और ऐश्वर्य के प्रति आकर्षण का भाव मनुष्य को पतन के गर्त की ओर ले जा रहा है। विश्व की शान्ति और मानवता की सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। इन परिस्थितियों

में आज मानव जीवन की नींव को पाषाण बनाने वाले वैदिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों को आत्मसात करने की आवश्यकता है। मानव जीवन को सार्थक बनाने, विश्व में शान्ति कायम करने और मानव जाति तथा मानवता को जीवित व सुरक्षित रखने के लिए वैदिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा करनी होगी। क्योंकि नैतिकता मानव जीवन की सफलता की कुंजी है।

शोध पत्र में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ईशावास्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, वृहदारण्कयोपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत आदि ग्रन्थों से उद्धृत लगभग 80 सन्दर्भों एवं उद्धरणों का गहनानुशीलन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि आधुनिक विचारकों की शिक्षा एवं नैतिकता की अवधारणा वैदिक सिद्वान्तों से पूर्णतः प्रभावित है तथा वैदिक कालीन शिक्षा एवं नैतिकता आधुनिक सन्दर्भों में भी प्रासंगिक है। वैदिक शिक्षा एवं नैतिकता की उपादेयता, अनिवार्यता एवं महत्ता सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक है।

57

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. सुनीता कुमारी

संस्कृत विभाग, बी.एस.एम. पी.जी. कॉलेज, रुड़की

शिक्षा, समाज के नैतिक स्तर और सिद्धांतों पर आधारित होती है। शिक्षा में नैतिक मूल्य निहित हैं। इसका परीक्षण 'प्रयोग' की विभिन्न श्रेणियों– प्रशिक्षण–कार्यक्रम, व्यवसाय, व्यवहारिक–शिक्षा और मानसिक–अनुशीलन आदि से भाषा–विश्लेषण विधि द्वारा किया जा सकता है। सर्वज्ञानमयो हि वेदाः रुप में वेद विपुल ज्ञानराशि हैं। ये शिक्षा के सम्पूर्ण वैभव को स्वयं में सन्निहित किये हुए हैं। ज्ञान–विज्ञान का ऐसा कोई मूल्य अवशिष्ट नहीं जो वेदों में अप्राप्य है। *'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'* वेद समस्त चेतन अचेतन प्राणिमात्र का मूल ज्ञानराशि है, तथा समसत धर्मों का मूल है। यह हमारा कर्म से ज्ञान तक जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। 'वेद' शब्द विद् धातु से घञ् प्रत्यय लगने पर निष्पन्न होता है। इसका शब्दिक अर्थ है ज्ञान। वेद ज्ञान राशि ऐहिक एवं पारलौकिक समस्त निःश्रेयस को सिद्ध कराने वाली है।

शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य और अलोभ विद्या के उज्जवल पक्ष माने गए हैं तथा नैतिक शिक्षा एवं आदर्श के मापदंड भी हैं। । वेद हमें यह बताता है कि आदर्श हीं नैतिक शिक्षा का मापदंड है। आदर्शों को ताक पर रख कर अनैतिकतापूर्वक किया गया विनाशी वस्तुओं का भण्डारण एवं भौतिकता का अंधानुकरण व्यर्थ है। सत्य का आश्रय लेकर परम सत्य के अन्वेषण की त्यागमय साधना, आत्म–तत्व एवं ईश चिन्तन तथा जन–कल्याण एवं विश्व–कल्याण की परिणति का आधारभूत किया जाने वाला व्यावहारिक कर्म ही नैतिक ज्ञान अथवा नैतिक शिक्षा की उपलब्धि है।

58

स्त्रीशिक्षा के संदर्भ में दयानन्द की वेदमूलक दृष्टि

डॉ. सुनीता शर्मा

संस्कृत विभाग, भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संसार का मूल वे दो सत्ताएं हैं जिनका रूप स्त्री और पुरुष कहा जाता है। अतः मानवीय साधनों के पूर्ण विकास, परिवार तथा देश के उत्थान के लिए नारी की शिक्षा आवश्यक है। एक नारी का शिक्षित होना पूरे परिवार का शिक्षित होना है। भारतीय संस्कृति में जो कुछ शुभ है, सुंदर है, शक्तिशाली है, जीवनदायक है, उसे नारी रुप में ही देखा गया है। मनु ने कहा भी है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। यत्रैतास्तु न पूज्यन्तें सर्वस्तत्राफलः क्रिया'। वैदिक संस्थाओं में नारी को उचित सम्मान व अधिकार प्राप्त हुए हैं। (ऋग्वेद 7/75/4,5; 3/33/19) ऋग्वेद के इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि स्त्री ब्रह्मा है जो राष्ट्र–यज्ञ तथा विश्व–यज्ञ की रचयिता तथा उसकी संचालिका है। वह ही ब्रह्मा के समान मानव की जन्मदात्री और जीवन निर्मात्री है।

महिलाऐं वैदिक काल में ऋषियों के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करती थीं। वे साहित्य, कला, विज्ञान, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान थीं, परन्तु जैसे–जैसे समय बीतता गया नारियों की स्थिति खराग होती गयी। समाज के ठेकेदारों ने नारियों के अधिकार छीन लिए। उन्हें शिक्षा के अवसरों से वंचित रखा जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी में जब महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का पदार्पण हुआ तब नारी जाति को एक सबल सहारा मिला। महर्षि दयानन्द यद्यपि गृहस्थी नहीं बने परन्तु फिर भी नारी के प्रति उनकी वेद मूलक दृष्टि उन्हें सम्मान दिलाती है। उन्होंने जहाँ विविध कुरीतियों, मिथ्याधारणाओं, व पातक अन्धविश्वासों का उन्मूलन करने का शंखनाद किया, वहाँ नारी को मध्ययुगीन दयनीय स्थिति से उबार कर समाज में उन्हें उचित स्थान दिलाने का भी भरसक प्रयास किया। उनकी दृष्टि में प्रत्येक वर्ग की नारी सर्वप्रथम पूजनीय है, चाहें वह किसी भी धर्म से सम्बन्धित क्यों न हो महर्षि दयानन्द ने नारी के उद्धार के लिए अनेक प्रयत्न किये। प्रस्तुत शोध पत्र में स्त्रीशिक्षा के संदर्भ में दयानन्द की वेदमूलक दृष्टि पर विचार किया जायेगा।

59

वर्तमान अनैतिकता के सन्दर्भ में ऋग्वैदिक शिक्षा

डॉ. सुरचना त्रिवेदी

असि.प्रो. संस्कृत, भगवानदीन आर्य कन्या स्ना. महाविद्यालय, लखीमपुर, खीरी (उ.प्र.) एवं एसोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

आज की शिक्षा पद्धति मात्र बाह्य संसार में सफल होने के लिए पर्याप्त है उसमें मानव के आन्तरिक सद्गुणों–सत्य, अहिंसा–नैतिकता, सभ्य आचरण के लिए कोई स्थान ही नहीं बचा। इसका परिणाम यह हो रहा है कि आज बुद्धिमत्ता के शिखर पर बैठा हुआ व्यक्ति भी भ्रष्टाचार, धन–लिप्सा, हिंसा सहित अनेक पशु–प्रवृत्तियों का आगार बन गया है। जिस पर चिन्ता तो सभी व्यक्त करते हैं परन्तु समाधान कोई नही बताता।

इन समस्त अनाचार वृत्तियों के सम्यक् समाधान वैदिक शिक्षा में उपलब्ध हैं, जिनका पालन करने से न केवल सिद्धान्त रूप में अपितु व्यवहार में भी सदाचार का आघान करना सम्भव है। वैदिक साहित्य में शिक्षा के अनेक आयाम–पशुत्व निवारण तथा द्विजत्व प्राप्ति अंगादि पुष्टि, परकल्याण सामर्थ्य का सम्पादन वाणी तथा इन्द्रिय शोधन, सद्गुणों का आघान, सच्चरित्रता, विनम्रता पूर्ण आत्म निर्भरता, आध्यात्मिक प्रवृत्ति, अन्तःकरण चतुष्टय, ब्रह्मचर्य संस्कार, योग विज्ञान आदि निहित थे, जिनसे एक समग्र मानव का निर्माण हो सकता था। वस्तुतः सभी प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य मानव का निर्माण ही है इस दृष्टि से वर्तमान शिक्षा के दोषों को वैदिक शिक्षा के दर्पण में पुनः दर्शन की आवश्यकता है तभी हम शिक्षित किन्तु असभ्य, उद्दण्ड तथा संस्कार हीनोन्मुख पीढ़ी को अपनी भारतीय संस्कृति का मूल्य बोध कराते हुए उसमें नैतिक आचरण शीलता को पुष्ट कर सकेंगे। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान एकांगी शिक्षा के दोषों व दुष्परिणामों को इंगित करते हुए शिक्षा का अर्थ, शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य, वैदिक शिक्षा प्रणाली में सदाचार तथा नैतिकता पूर्ण आचरण की शिक्षा के बिन्दुओं को ऋग्वेद के संदर्भो के आधार पर मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

60

The Ideal Educated Person of the Vedas

Dr. T. Ganesan

Senior Researcher, Saivasiddhanta & Saiva Agama, French Institute, Pondicherry (T.N.)

The Vedas discuss the fundamental question: 'what is knowledge?' Vedic teachings do not constitute dogmas but are a codified from of reasoning. The man of learning—*bahuœruta*—is highly venerated and more so for his conduct and adherence to dharma. The same view is clearely stated by the sages who

authored the *Dharmasûtra*-s as evidenced by the *Gautamadharmasûtra* (6.21). It is well known the Veda-s mainly focus on the importance of moral and ethical values as the foundation for higher spiritual attainment. Any hymn or a group of hymns can be found to be stressing the utmost importance of morality and the universal *dharma*. To know the supreme truth and to follow the universal order are the highest goals the Vedic sages set for themselves and for mankind. The Vedic *Ritam* is a spiritual as well as a psychological conception. It is the true being, the true consciousness, the true delight of existence beyond this earth. *Dharma* is law of life and development, and it is the underlying truths of the universe which mankind as a higher being is supposed to adhere to for its own as well as other's welfare. It designates various facets of a value system throughout one's life. To put it simply, *Dharma* can be said to be expressed in the duties and responsibilities of an individual or a community.

The Vedic sages solely aim at a good and blissful life based on *Dharma*. It is not opposed to reason but upholds reason as the highest value. To cite an example, during the period of learning or *brahmacharya*, every pupil received instructions to speak the truth and live according to *Dharma* or moral law (*Rita*). '*satyam vada . dharmam cara'* are the lofty ideals set forth for the learned in the famous instruction given by the *Âcârya* to his pupils. The prayer of the man aiming the highest is as stated in the Rigveda '*agne naya supathâ râye asmân viúvâni deva vayunâni vidvân'*। (1.189., 2). With this outlook the ideally educated man of the Vedas lived in this world from time immemorial. To tread the righteous path always is the supreme aim of the educated man. He always wishes that like the sun and moon he will conduct himself for the welfare of all beings '*svasti panthâm anu carema sûryâcandramasâv iva*।*'* (*Rigveda* 5.51.15). I will highlight these supreme virtues and moral values an educated person of the Vedas prays for and stands for in his entire life.

61

वैदिक शिक्षा में प्रतिच्छवित नैतिक मूल्य : एक परिशीलन (आधुनिक सन्दर्भ में)

डॉ. विनोद कुमार गुप्त

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत, राजकीय स्ना. महाविद्यालय, नई टिहरी (उत्तराखण्ड)

'आज समाज में अनैतिक कृत्यों के मूल में दो बातें समझ में आती हैं–विश्वबन्धुत्व की भावना का अभाव तथा दूसरे लोगों के सुख–दुःख की चिन्ता न करते हुए अनैतिक कृत्यों के द्वारा अपने भोग विलासिता की समस्त वस्तुओं से सम्पन्न न होने की इच्छा। वस्तुतः यही दो कारण आज की समस्त अनैतिक कार्यों की मूल हैं। अतः उपभोक्तावदी युग में सम्प्रति चारों ओर भ्रष्टाचार, दुराचार, व्यभिचार, आतंकवाद, साम्प्रदायिक विवाद आदि अमानवीय एवं अनैतिक आचरण का आधिपत्य सा स्थापित हो गया है, जिस कारण भारतीय संस्कृति अपसंस्कृति की कलुषित छाया से आच्छादित हो गयी है। अलौकिक उत्कर्ष की हत्या कर वह लौकिकता के पीछे भाग रहा है। शायद इसके मूल में आज की शिक्षा–पद्धति है, जिसमें अलौकिक (आध्यात्मिक) विकास का कोई स्थान नहीं दिखायी देता। पाठ्यक्रमों में नैतिक मूल्यों (जिसके कारण भारतीयता की पहचान है) से सम्बन्धित पाठ्यचर्या लुप्तप्राय हो गयी है, जिससे आज की युवा पीढ़ी विद्यार्थी–जीवन में नैतिक मूल्यों से संस्कारित नहीं हो पाती। अतः आवश्यकता है लौकिक उत्कर्ष के साथ–साथ नैतिक उत्कर्ष की, जिससे व्यक्ति में आशा की ज्योति प्रदीप्त हो, विश्वबन्धुत्व का भाव जागरित हो, आत्मिकबल एवं मनोबल की वृद्धि हो, उत्साह एवं पुरुषार्थ का संचरण होवे, पापकर्म से निवारित करने वाली आस्तिकता की भव्यभावना प्रस्फुटित होवे। अतः वैदिक वाङ्मय में प्रतिच्छवित नैतिक मूल्यों की उद्भाविका शिक्षा के सन्दर्भ में विचार एवं प्रचार–प्रसार अत्यन्त प्रासङ्गिक प्रतीत होता है। प्रकृत पत्र में नैतिक मूल्यों के रूप में उपबृंहित विश्वबन्धुत्व की भावना पारस्परिक सौहार्द्र, प्रेम भावना, अहिंसा, अन्न का महत्त्व, माधुर्य, व्याभिचारिक कृत्यों की निन्दा, सदाचरण, सत्कर्म, कौटुम्बिक सौमनस्य आदि पर शोध–परक दृष्टि डाली गई है।

PART-2 (YOUNG DELEGATGES)

62
The Significance of Vedic Education and Moral Values In Modern Period

Mr. Abhineet Kumar Srivastava

Research Scholar, Sanskrit Deptt., Faculty of Arts, B.H.U., Varanasi (U.P.)

The most important contribution of ancient India not only for India but also for the world is in the field of education. It may also be remembered that education is manifested in the cultural economic, individual, philosophical, scientific, social and spiritual advancement. In other words, education is the means for developing the mind for the betterment of an individual and society. No study of the source of Indian culture, education, philosophy and thought is complete without an adequate acquaintance and understanding of the 'Vedic Literature'. The education system which was evolved first in ancient India is known as the Vedic system of education. Some scholars have sub-divided Vedic Educational period into Rig-Veda period, Brahman period, Upanishad period, Sutra (Hymn) period, Smriti period etc. but all these period, due to predominance of the Vedas, there was no change in the aims and ideals of educations.

The ancient education system has been a source of inspiration to all educational systems of the world. The ingredients, which our present system lacks, and which were the predominant facets of our ancient system relate to admission policies (*Upanayan*), monitorial system, low teacher pupil ratio, healthy teaching surroundings, f` schooling and college education, sympathetic treatment, role of punishment in discipline, regulation governing student life. In Vedic age students used to lead a simple life. Nowadays the life style of our young generation has altogether changed they like to lead luxurious and majestic life, full of fashion and show. They have given up the principle of 'Simple Living and High Thinking' and adopted its reverse principle i.e. 'High Living and Simple Thinking'. The whole balance of the life is disturbed. In order to make their life healthy and smooth they should be made to realize the importance of ancient style of living. There is a wide gap of education between ancient Indian education and modern Indian education. Still there are several elements of ancient education which can find its place in modern education both in theory and practice. A present paper highlights these elements of education.

63
वैदिक शिक्षा प्रणाली से समृद्ध भारत की कल्पना

श्री आदित्य प्रताप

शोधछात्र, संस्कृत तथा प्राकृत–भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

एक दिन न्यूटन सेब के पेड़ के नीचे बैठा था उसने पेड़ से गिरते हुए सेब को देखा, उसके मन में विचार आया कि यह सेब नीचे ही क्यों गिरा? ऊपर क्यों नहीं गया? और इस प्रकार न्यूटन ने पृथ्वी में गुरूत्वाकर्षण बल की कल्पना की। उसका यह सिद्धान्त आगे चलकर न्यूटन का गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्त कहलाया। तब हम भारतीयों ने अलोचना की कि इसकी कल्पना तो सर्वप्रथम हमारे यहाँ ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त' नामक पुस्तक में की थी। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मगुप्त की कल्पना के हजार–बारह सौ वर्षो के बाद भी किसी भारतीय में 'जूँ तक नहीं रेंगा' कि वे इस तरफ सोचें, कार्य करें और जब श्रेय–प्रेय न्यूटन को मिला तो हम भारतीयों को अपार दुःख हुआ। इसी प्रकार अनन्त (अन्तरिक्ष) की कल्पना भी सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त में मिलती है लेकिन उस पर काम सबसे पहले

अमेरिका ने किया। अधिकांशतः खोजें विदेशियों ने हमारे वैदिक साहित्य को पढ़कर ही की है। हमारी सोच संकुचित है उसमें वैश्वीकरण, दूरदर्शिता, वैज्ञानिकता, भौतिकता का अभाव है। चूँकि हम वैदिक साहित्य को आदिमकाल से केवल धर्म से ही जोड़कर देख रहे है। तभी वेदादि के भौतिक प्रभाव को नहीं समझ पा रहे है।

'माँग ही नीतियों को जन्म देती है' तभी बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय हुआ। आज जरूरत है– वैदिक शिक्षा प्रणाली में अमूलचूल परिवर्तन करके उसे व्यापक बनाने की, उसे आधुनिक शिक्षा से जोड़ने की एवं वेदों में समाहित आधुनिक विषयों को पृथककर उन्हें पृथक विषय बनाने की जैसे– वैदिक इन्जीनियरिंग, वैदिक मेडिकल साइन्स, वैदिक कृषि इन्जीनियरिंग, वैदिक अन्तरिक्ष विज्ञान, वैदिक ज्योतिष (गणित एवं फलित), कौटिलीय राजनीति एवं दण्डव्यवस्था, वैदिक प्रबन्धन, वैदिक रक्षा एवं प्रौद्योगिकी, वैदिक टेलीपैथी (संचार–व्यवस्था), प्राकृतिक आपदाओं का सूक्ष्म अध्ययन : वैदिक परिपाटी से, वैदिक सिनेमैटोग्रॉफी, वैदिक पर्यावरण विज्ञान, वैदिक संगीत शिक्षा अथवा आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन आदि। इन विषयों को सभी विश्वविद्यालयों, संस्कृत विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, संस्कृत संस्थानों, गुरूकुलों, वेदालयों में अनिवार्य रूप से लागू कर देना चाहिए और फिर यहाँ से पढ़कर विद्यार्थी इन्जीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, कृषि–वैज्ञानिक, ज्योतिषाचार्य, कुशल राजनीतिज्ञ, कुशल प्रबन्धक, कलाकार, संगीतज्ञ, आचार्य बनकर ही निकलेंगे। इस प्रकार प्राचीन वैदिक शिक्षा को अर्वाचीन शिक्षा से जोड़कर भारत को पुनः 'आधुनिक सोने की चिड़िया' बना सकते है, क्योंकि जिस देश के लोग जितने ही ज्यादा बहुविद् शिक्षित होंगे वह देश उतना ही ज्यादा समृद्ध और विकसित होता है।

64
अथर्ववेद में वर्णित नैतिकता की प्रासंगिकता

कु. आकांक्षा सिंह

शोध–छात्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

वेद भातीय चिन्तन और संस्कृति की आधारशिला है। वैदिक साहित्य से ही भारतीय ज्ञान एवं संस्कृति की शाश्वत् और अविच्छिन्न धारा आज तक प्रवाहित हो रही है। नीति ज्ञान का चरम प्रमाण वेद है। इसलिए भारतीय नैतिक विचारों के मूल और चिन्तन स्वरूप का दर्शन वेदों में सम्भव है। कालान्तर में ही मनुष्य द्वारा सामाजिक व्यवहार के अनुरूप नैतिक विचारों में विकास और परिवर्तन हुए हैं। अथर्ववेद में नैतिकता से सम्बन्धित सैकड़ों मन्त्र हैं, जिनमें सत्य, अहिंसा, सदाचार, मित्रता, सन्मार्ग पर चलना, पुरुषार्थ, तेजस्विता, मधुर वचन आदि सद्गुणों का वर्णन है। अथर्ववेद में नैतिक सिद्धान्तों का विवेचन विशेष रूप से किया गया है। अथर्ववेद के मन्त्रों में नैतिकता के प्रति स्पष्ट आग्रह है। दुराचार, दुष्कर्म और पापों की चर्चा उनके परिशोधन और परिमार्जन के उद्देश्य से है। अथर्ववेद में सामान्यतया मानव नीति ही वर्णित है। इसमें निर्दिष्ट लक्ष्य जीवन के सामान्य लक्ष्य हैं। अथर्ववेद में परम लक्ष्य के रूप में वैदिक आदर्श मोक्ष का रूप मिलता है, जो आत्मपूर्णता के रूप में परवर्ती काल में नीति का परम लक्ष्य माना गया है। इस प्रकार अथर्ववेद में वर्णित नैतिकता की उपयोगिता का विवेचन किया जायेगा।

65
Universal Objectives of Education Reflected in the *Shikshavalli* of the *Taittiriyopanishad*

Ms. Anakshi Bora

Department of Sanskrit, Gauhati University, Guwahati (Assam)

The modern system of education has been built primarily upon the foundation of ancient educational ideals. The practices of modern education have been largely influenced by the process of past experiences. Vedic views are the root of our civilization, so we cannot neglect the sphere of those views from which our civilization has developed to its present form.

The Upanishads are the most important part of the Vedic literature. The Upanishads guide the students through the valuable advices of the preceptors for choosing the correct path in life. That policy of education had some special characteristics and it is to be note worthy that, it could be connected in the modern field of education. In this regard we may refer to the *Shikshavalli* section of the *Taittiriyopanishad* where education has been handled as a philosophical policy with the existence of the teacher in the beginning, the students at the end and the subject of teaching in the middle. Through the proposed paper an attempt is made to interpret the policy of education reflected in the *Shikhsavalli* section and its utilization in modern educational fields.

66

Relevance of Vedic Values in Modern System of Education

Dr. Anita Gupta

Teacher's Trainer, Basic Shiksha Parishad, Lucknow (U.P.)

Education is a continuous and creative process. Its aim is to develop the capacities latent in human nature and to coordinate their expression for the inrichment and progress of a society, by equpping children with spiritual, moral and material knowledge. True education releases capacities develop analytical abilities, confidence in self, will-power and goal setting competencies and instils the vision that will enable him to become self motivating agent of social change, serving the best interest of the community. To achieve such aims of education it is felt what the true values enshrined in sacred scriptures like 'Vedas' and *Upanishad*s can give us an appropriate direction. Vedic values provide an angle of vision and a sense of perception in which the material, moral, physical and spiritual values of life are clearly define and strictly differenciated. So, Vedas have great practical relevance that can be able to fullfill the most vital duty in this day to purify our characters, to correct our manners and improve our conduct.

In the Vedic society the spreading of education and knowledge in society is the duty of king as well as 'Gurus'. Swami Dayanand takes some concepts for in case of education by defining Varun, Mitra and Savita as kings. According to this mantra a man says – "*If I would be the master of voice and science then I spread sufficient knowledge to all.*" Vedas depicts that the main aims of education is to develop physical, mental & spiritual values in man. At certain places in history, education was a powerful instrument for profound social transformation.

So, the true education enables an ignorant to a learned, coward a valiant. On the other hand if we ignore our Vedic educational values the children will turn in to weeds growing wild and become the cursed infemal t` knowing nothing about humanity, modesty, tolerance and mercy etc. I will try to illustrate the significance and relevance of Vedic values in present system of education in my paper.

67

शतपथ ब्राह्मण में समाजपरक नैतिक अवधारणा

डॉ. अपर्णा धीर

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली

समाज की नैतिक अवधारणा का मूल उस समाज की शिक्षा–पद्धति होती है। शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य चरित्र–निर्माण करना, व्यक्तित्त्व विकास करना एवं कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करना है। साथ ही, यही शिक्षा मनुष्य को समस्त प्राणियों के प्रति संवेदनशील बनाती है तथा निषिद्ध आचार का बोध भी कराती है। इन्हीं सब विचारों से नैतिक समाज का स्वरूप बनता है। *'अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या* (2.10), *'दैवीं धियं मनामहे* (4.11), *'अगन्महि मनसा सं शिवेन* (2.24) इत्यादि

प्रार्थनाएँ यजुर्वेदीय कालीन समाज की नैतिक अवधारणा के प्रति जागरूकता को दर्शाती हैं। शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में याज्ञिक अनुष्ठानों के विवेचन से परिपूर्ण होने पर भी तत्कालीन लोगों के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनैतिक आदि जीवन–मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध–पत्र मुख्यतः नैतिक अवधारणा से सम्बद्ध है। शतपथ ब्राह्मण में अनेक सन्दर्भों में पद–पद पर लोक–कल्याण अथवा जनहित को बताया गया है। यथा– *'अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति'* (1.1.1.1) अर्थात् वह मनुष्य अपवित्र कहलाता है जो झूठ बोलता है, *'सर्वस्य ह्येव मित्रो मित्रम्'* (5.3.2.7) अर्थात् मित्र सबका मित्र है, *'हृदयेन हि श्रद्धत्ते'* (14.6.9.22) अर्थात् हृदय में ही श्रद्धा होती है इत्यादि। वर्तमान समय में परस्पर कलह, द्वेष आदि के कारण समाज में झूठ, भ्रष्टाचार, शत्रुता, अविश्वसनीयता आदि अनैतिक तत्त्वों को बढ़वा मिला है, जिससे हमारे राष्ट्र की अवनति हो रही है। आधुनिक काल में राष्ट्र को नैतिक दृष्टि से समुन्नत बनाने के लिए निश्चित ही शतपथ ब्राह्मण में वर्णित समाजपरक नैतिक मूल्य अपरिहार्य हैं। इन्हें अपनाकर वास्तविक अर्थों में हमारा राष्ट्र पुनः 'विश्वगुरु' कहलाया जा सकेगा।

68

वेदकालीन नैतिक शिक्षा एवं सामाजिक सद्भाव

श्री अरविन्द कुशवाहा

शोध–छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में सदाशयता, सद्भावना और सहिष्णुता निरन्तर रही है। यही विशिष्टता प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति की प्रधान प्रेरणा रही है। व्यक्ति का परिवार और समाज के प्रति सहिष्णुता का व्यवहार करना हिन्दू सामाजिक दर्शन का मुख्य प्रेरक तत्व रहा है। वस्तुतः भारतीय सामाजिक आदर्श का आधार था धर्म, जो न दूसरे को आघात पहुँचाता था और न किसी का विरोध करता था। इसी विचार के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में व्यवहार करता था। सद्भावना और सहिष्णुता प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श था। व्यक्ति चाहे किसी भी धर्म और समुदाय का प्राणी क्यों न रहा हो, भारतीय आदर्श यह था कि सभी जीवों में ईश्वर का वास रहता है इसलिए सहिष्णुता और सदाशयता का आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है। इसमें भेद–भाव और ऊँच–नीच की भावना का भी प्रवेश नहीं था। सद्भावना ही प्रधान थी। मन, वचन और कर्म से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा सभी के साथ यथार्थ और प्रिय संभाषण करना, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्मों में कर्त्तापन के अभिमाान का त्याग करना, अन्तःकरण की उपरामता अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव, किसी की भी निन्दादि न करना, सब भूत प्राणियों में हेतुरहित दया दर्शित करना, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर आसक्ति का न होना, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरूद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव आदि मनुष्य की सद्भावना के अन्तर्गत आने वाले गुणात्मक व्यवहार थे।

ऋग्वैदिक आर्यों ने विश्व में सर्वत्र एक व्यवस्था देखी इसीलिए उन्होनें विश्व–व्यवस्था की कल्पना की। इस विश्व–व्यवस्था को उन्होंने 'ऋत' कहा। ऋग्वैदिक आर्य यह भली–भॉति जानते थे कि 'ऋत' का उल्लंघन करने से पाप होता है, वे समझते थे कि अच्छा कार्य करने से अच्छा फल मिलेगा और बुरा कार्य करने से बुरा फल। उनकी धारणा थी कि विश्व–व्यवस्था का नियामक 'वरुण' है। उससे प्रार्थना की गई है कि यदि हम अपने मित्रों, अतिथियों, बन्धु–बान्धवों या परिवार के सदस्यों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन न करें, तो वरूण हमें दण्ड दें। यदि हमने भूल से भी किसी को धोखा दिया है, तो वह हमें उस अपराध के लिए क्षमा करें। ऋग्वेद के एक मंत्र से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्य मनुष्यों के प्रति भी कुछ कर्तव्य माने जाते थे। ऋग्वेद में कहा गया है कि सोम सत्य की रक्षा करता है और असत्य को नष्ट करता है। इसका अर्थ है कि समाज में नैतिकता तभी रह सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति मन, वचन, कर्म से सत्य का पालन करे। प्रस्तावित शोध–पत्र में उपर्युक्त प्रसंगों का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा तथा सामाजिक विखण्डन को रोकने वाले और सामाजिक सद्भावना के कारकों को उद्घाटित करने का प्रयास किया जाएगा।

69

वैदिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों की आधुनिक सन्दर्भ में विवेचना

श्री अशोक कुमार

शोध–छात्र, विशिष्ट संस्कृत अध्ययनकेन्द्र, जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानव जीवन में शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिना शिक्षा के विद्या प्राप्त किए मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता है। शिक्षा एवं नैतिकता मानव मात्र के सर्वांगीण विकास के लिए अमोघ साधन है। वैदिक शिक्षा–पद्धति का मुख्य उद्देश्य मानव को केवल त्यागवादी ही बनाना नहीं है अपितु बालक का सर्वांगीण विकास करना ही मुख्य ध्येय है। अथर्ववेद का आरम्भ ही वैदिक शिक्षा के उद्देश्य के साथ प्रारम्भ होता है– *'पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्'*। वैदिक काल में यह नियम था कि सब बालक और बालिकाओं को छः से आठ वर्ष की अवस्था तक आचार्य कुल एवं गुरुकुलों में भेज देना चाहिए। शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार द्वारा होता था। इस अवसर पर बालकों और बालिकाओं को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था। वैदिक शिक्षा–पद्धति गुरुकुलीय एवं यज्ञप्रधान थी। वैदिक शिक्षा–प्रणाली में परिवेश के पोषक तत्त्व तीन माने जा सकते हैं– (क) संस्कार (ख) गुरुकुल (ग) यज्ञ वैदिक शिक्षा–प्रणाली संस्कार–पद्धति पर आधारित होने से सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। गुरुकुलाधारित वैदिक शिक्षा–प्रणाली केवल पुस्तकीय ज्ञान पर बल नहीं देती, उसमें व्यावहारिक आदर्श और चरित्र–निर्माण समान रूप से महत्वपूर्ण माने गये थे। गुरुकुल–पद्धति में प्रकृति के सतत साहचर्य में अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहकर जो शिक्षा अर्जित की जाती थी वह शिक्षार्थी को कष्टसहिष्णु, संयमी, उदार एवं परिश्रमी तो बनाती ही थी, उसके अन्तस् में प्राणिमात्र के प्रति दया की भावना भी जगाती थी।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के द्वारा ही हम समाज में एकरूपता, एकरसता ला सकते हैं। कुछ मानवीय मूल्य ऐसे होते हैं जिनका कदापि विरोध नहीं किया जा सकता है। यथा– प्रेम, दया, सहानुभूति, त्याग, सेवा, सहिष्णुता, परस्पर सहयो भावना उत्तमोत्तम आचरण शिक्षा, विद्या मनुर्भव, इत्यादि इन शुभ श्रेष्ठ गुणों द्वारा ही मनुष्य का सुनिर्माण सम्भव है। इसी के द्वारा समाज एवं राष्ट्र को भी मंगलमय बनाया जा सकता हैं। ऋत, सत्य, अहिंसा, विश्वबन्धुत्व, दान एवं लोककल्याण का उल्लेख वेदों में किया गया है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ. राधाकृष्णन् ने आधुनिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों के ह्रास (क्षय) के विषय में लिखा है– 'भारत सहित सारे संसार के कष्टों एवं मानसिक अशांति का कारण यह है कि शिक्षा का सम्बन्ध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न (नहीं) रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है, जिस शिक्षा में हृदय और आत्मा की अवहेलना है उसे पूर्ण नहीं माना जा सकता'। आधुनिक काल में वैदिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों को मानव समाज में अपनाकर हम समाज में सहिष्णुता, परस्पर–सहयोग भावना, त्याग, प्रेम, दया, सहानुभूति शुभ श्रेष्ठ आदर्शों इत्यादि का विकास कर सकते हैं।

70

वैदिक शिक्षा–पद्धति का स्वरूप और उसकी प्रासंगिकता

श्री आशुतोष कौशिक

शोध–छात्र, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलालनेहरु विश्वविद्यालय, दिल्ली

शिक्षा के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकुचित और जीवन कष्टकारी है। समाज की उन्नति और लक्ष्य की प्राप्ति ज्ञान पर आधारित है। भारतीय समाज एक परम्परागत समाज है। वेद सभी विद्याओं का मूल है। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य था– शिष्य का सर्वांगीण विकास और उसकी ज्ञान ज्योति को प्रबुद्ध करना । अतः वैदिक शिक्षा का माध्यम योग–विज्ञान अथवा योग–चित्तवृत्ति निरोध है। यह मस्तिष्क–नियन्त्रण की प्रक्रिया है जिससे प्रखर से प्रखर ज्ञान को अति सूक्ष्मदृष्टि द्वारा प्राप्त किया जा सके और समग्र मानसिक क्षमता का उपयोग किया जा सके।

वेदों में संगठित शिक्षाप्रणाली के अन्तर्गत शिक्षक के गुण, शिष्य–शिक्षक सम्बन्ध, शिक्षण–शैली या शिक्षण–विधियाँ पर विचार किया गया है। वैदिक शिक्षा–पद्धति मनोवैज्ञानिक थी। उसके अनुसार शिक्षक को समुचित रूप से दण्डित कर सकने की सामार्थ्य वाला, छात्रों की प्रत्येक गतिविधि का परिचय रखने वाला, चन्द्र के समान आकर्षक एवं सौम्यता

वाला तथा छात्रों के मानसिक व शारीरिक विकास में सहायता करने वाला होना चाहिये। इसी प्रकार वैदिक काल में शिष्य भी गुरु के समीप उसके परिवार के सदस्य रूप में विद्याध्ययन करता था। अतः दोनों परस्पर सम्बन्ध मधुर थे *'आचार्यउपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।'* (अथर्ववेद 11.5.3.)। शिक्षक की शिक्षण–शैली के विषय पर वैदिक ऋषियों ने बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से चिन्तन किया है। शिक्षण–विधि नीरस न होकर सरस एवं आकर्षक होनी चाहिये *'वास्तोष्पते नि रमय मययेवास्तुमयि श्रुतम्'* (अथर्ववेद 1.1.2.)। ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त अनुसार पढ़ने वाले सभी छात्रों की ग्रहण–क्षमता एक–समान नहीं होती, अतः शिक्षक को पढ़ाते समय सभी छात्रों का ध्यान रखना चाहिये। सैद्धान्तिक–ज्ञान के साथ क्रियात्मक–ज्ञान भी वैदिक काल में आवश्यक था।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली यद्यपि वैदिक शिक्षा–प्रणाली से पूर्णतः भिन्न दृष्टिगोचर होती है, फिर भी वर्तमान शिक्षा को नियोजित करने व इसकी अनेक समस्याओं का समाधान खोजने की प्रत्येक चेष्टा में प्राचीनतम शिक्षा के मूलभूत आधारों पर ध्यान देना सार्थक सिद्ध होगा।

71

आधुनिक युग में वैदिकशिक्षा एवं नैतिकता का महत्त्व : धर्मसूत्रों के संदर्भ में

श्री अविनाश पाण्डेय

शोध–छात्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली

संस्कृतजगत् में 'धर्म' शब्द का आयाम अत्यन्त विस्तृत है। वेद में यह कहीं विशेषण के रूप में तो कहीं संज्ञा के रूप में *'पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्'* (ऋ.1.187.1) प्रयुक्त हुआ है, अथवा धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में (ऋ.1.22.18)। किन्तु किसी भी पक्ष से इन अर्थों के जड़ में यदि जाए तो वह एक ही उत्तम भाव को अनुप्राणित करता है। अभिप्राय यह है कि मानवीय शिक्षा एवं जीवनोपयोगी नैतिकता जो प्रायः लुप्त होती नज़र आ रही है। उसे प्रकाश में लाने का प्रयास प्रस्तुत शोधपत्र द्वारा किया जा रहा है।

72

वैदिक संस्कृति द्वारा प्रदान की जाने वाली सत्प्रवृत्तियों की आधुनिक जीवन में उपयोगिता

कु. भावना कोठारी

शोधछात्रा, संस्कृत, डी. एस. बी. परिसर, कु. वि. वि. नैनीताल (उत्तराखण्ड)

वेद रूपी समुद्र से चुन–चुन कर निकाली गयी मणि व मोतियों रूपी प्रमुख सुभाषितों व सूक्तियों द्वारा तथ्य रूप में ज्ञान, अध्यात्म, नैतिकता, चारित्रिक उन्नति, सदाचार, सहयोग, सद्भाव, सेवा, संयम, त्याग, बलिदान, उद्यम, कर्म आदि सत्प्रवृत्तियों के अनुकरण करने की प्रेरणा प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया गया है। वैदिक संस्कृति में भौतिक उन्नति के साथ–साथ आध्यात्मिक, चारित्रिक और नैतिक उन्नति को भी उच्च स्थान प्राप्त है। विकास सर्वोन्मुखी हो तो वह समाज का हित करता है। मनुष्य को बुद्धि, विवेक, ज्ञान और आत्मिक सम्पदायें इसीलिए प्राप्त हैं कि वह संसार की यथार्थता समझें और जीवन लक्ष्य को प्राप्त करें। आत्मकल्याण, ईश्वरीय प्रसन्नता, पुण्य–परमार्थ, कर्मफल आदि मान्यताओं के आधार पर ही मनुष्य अपनी चिरसंचित पशुता पैशाचिकता पर नियन्त्रण करने और लोक–कल्याण के लिए नितान्त आवश्यक सत्प्रवृत्तियों को चरितार्थ करने में समर्थ होता है। अपने आप का सुधार व परिष्कार मनुष्य अपने आत्मबल से ही करता है और यह आत्मबल सत्प्रवृत्तियों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वैदिक संस्कृति के द्वारा अनुचित कार्य नहीं करने व सदा सावधान रहने की एवं कलह, हिंसा, पापबुद्धि और द्वेष आदि बुरी प्रवृत्तियों से अपने आपको दूर रखने की प्रेरणा प्रदान की गयी है। बुरी प्रवृत्तियों से होने वाले विनाश व सत्प्रवृत्तियों से होने वाले कल्याण का मनन करने की सामर्थ्य वैदिक संस्कृति द्वारा मानव को प्रदान की जाती है।

वर्तमान काल में मानव समाज का स्वरूप अव्यवस्थित है। मानव का चिन्तन स्तर जड़ता को प्राप्त हो गया है। भौतिकता की प्रधानता ने आध्यात्मिक, नैतिक व चारित्रिक आदि विकासों को नगण्य सा कर दिया है। भौतिकता के इस युग में मानव के भौतिक विकास ने तो नित नये आयामों को छुआ है। परन्तु इन अन्य (आध्यात्मिक, नैतिक व चारित्रिक आदि) विशेषताओं का उचित समन्वय न हो पाने के कारण भौतिक विकास की यह प्रवृत्ति विध्वंशकारी बन गयी है, जो कि समाज और मानव जाति के अस्तित्व के लिए घातक है। अतः हमें समाज की कल्याणकारी प्रगति के लिए वैदिक संस्कृति द्वारा प्रदान की जाने वाली इन आध्यात्मिक, नैतिक व चारित्रिक आदि सत्प्रवृत्तियों को अपने जीवन में समाहित करना होगा।

73
Vedic Views on *Úraddhâ* : Its Relevance in Modern Perspective

Ms. Bornali Borthakur

Research Student, Sanskrit, Gauhati University, Guwahati (Assam)

Úraddhâ or respect is very essential to success in life. Basically that work becomes fruitful which is done devotedly. Without *Úraddhâ* we cannot prosper in our life. This moral thought is stated in the *Rigveda* X.151, where *Úraddhâ* is worshipped as a deity. Though it is a short hymn comprising of only six verses yet it carries a great message to us. This Vedic thought is also discussed in the seventeenth chapter of *Úrîmadbhâgavadgîtâ* and also in the *Úântiparva* of the *Mahâbhârata.* In this paper an attempt will be made to highlight the thoughts regarding *Úraddhâ* as revealed in ancient literatures which is very important in our day to day life.

74
वैदिक शिक्षा–पद्धति में अनुशासन का स्वरूप : वर्तमान सन्दर्भ

डॉ. ब्रह्मानन्द पाठक

लखनऊ

वेद भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। वैदिक वाङ्मय से ही आर्य जाति के उदात्त आदर्शों का ज्ञान होता है। वेदों ने ही विश्व संस्कृति और सभ्यता को पल्लवित और पुष्पित किया है। मानव जीवन में अनुशासन का अत्यधिक महत्त्व है। जीवन की सफलता के लिए अनुशासन की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। मनुष्य को जन्म से ही अनुशासित रहना पड़ता है, चाहे वह बचपन में परिवार के साथ हो या शिक्षा ग्रहण करते समय गुरु के सानिध्य में। अनुशासित रहने से ही वे श्रेष्ठ मनुष्य बनकर सम्पूर्ण जीवन का सफलतापूर्वक निर्वहन कर सकते हैं। गुरु के आश्रम में जो आचार–संहिता निर्धारित थी, उसका पालन करना अनिवार्य था। आश्रम के नियमों का पालन करना उनके लिये धर्मानुशासन का अंग था। प्रातः–सायं भिक्षाटन उनके नियमों में सम्मिलित था, जिसका अभिप्राय मनोवैज्ञानिक रूप से उनके अहं–दलन द्वारा उन्हें समाज के प्रति विनम्र और कर्त्तव्यपरायण बनाना था। वैदिक शिक्षा–पद्धति में नियम पालन तथा अनुशासन का महत्त्व है। वैदिक ऋषियों ने अनुशासन के जो नियम निर्धारित किये हैं, उसका पूर्णतया पालन करने से ही मनुष्य खुशहाल जीवन व्यतीत कर सकता है। वर्तमान समय में मानव अपने आदर्शों को भूल गया है, उससे नाना समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। प्रस्तुत शोध–पत्र में अनुशासन की उपयोगिता का विवेचन किया जायेगा।

75
वर्तमान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में वैदिक चिन्तन

कु. चेतना भण्डारी

शोध–छात्रा, संस्कृत, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

शिक्षा से ही वर्तमान की अतीत संस्कृति वर्तमान में जीती है तथा पहले से चली आ रही परम्पराएँ जीवन्त हो उठती हैं। भारतीय समाज में प्राचीनकाल से शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक व परलौकिक जीवन के निमित्त विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। वैदिक युग में भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पन्न करने के लिए शिक्षा दी जाती थी। वैदिक शिक्षा का मूल आधार मानव बुद्धि का परिष्कार कर सुपथ के दर्शन कराना था। वैदिक शिक्षा के मूल में श्रद्धा की भावना थी। वैदिक शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की आधारशिला थी। गुरू व्यक्तिगत रूप से शिष्य से परिचित रहता था। शिक्षा के बहुमुखी उत्थान हेतु वर्तमान शिक्षा के वैदिक चिन्तन की अत्यधिक आवश्यकता है।

76
समाजोत्थान की दिशा में ऋग्वैदिक वाङ्मय में निहित नैतिकतत्त्व

कु. छाया पाण्डेय

शोधछात्रा (संस्कृत), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

एक स्वस्थ साहित्य समाज को सही दिशा की ओर ले जाता है, उसको हुष्ट–पुष्ट, सद्व्यवहारी, ईमानदार, पवित्र बनाने में कारण बनता है एवं अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। इन्हीं सब विशेषताओं को आत्मसात् किये हुए विश्व साहित्य के इतिहास में अत्यन्त प्राचीन कही जाने वाली भाषा संस्कृत में उपलब्ध 'वैदिक वाङ्मय' का महत्त्व अत्यन्त प्राचीन है। उपयोगिता की दृष्टि से यह मानव समाज के लिए न केवल अत्यन्त आवश्यक है, अपितु हमेशा से प्रेरणा का स्रोत रहा है।

वर्तमान मानव समाज भौतिक प्रसाधनों से परिपूर्ण है, यह बात सत्य है मगर यह भी सत्य है कि धनधान्य प्रचुर मात्रा में होने के बाद भी आज मानव पहले से अधिक असुरक्षित एवं दुःखी है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि व्यक्ति अपनी जीवन पद्धति को पूरी तरह से भूल चुका है, नैतिकता का पतन होता जा रहा है और अनाचार, भ्रष्टाचार इत्यादि अपना प्रबल रूप समाज में व्याप्त कर रहे हैं। यह नितान्त सत्य है कि जैसे अग्नि में ईंधन और घी डालने से अग्नि की ज्वाला और अधिक बढ़ जाती है, वैसे ही कामनाओं के योग से कभी भी भोगेच्छा शान्त नहीं होती, बल्कि वह और बढ़ जाती है– *'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति'* (मनुस्मृति 2/94)। और जब तक हम यह नहीं समझेंगे, वैदिक संस्कृति की ओर नहीं लौटेंगे हमारा समाज पतन की ओर ऐसे ही अग्रसर होता रहेगा। प्रस्तुत शोध पत्र में ऋग्वेद में निहित नैतिक तत्त्वों को जो आज के समाज को उन्नति की ओर अग्रसर कर सकते हैं, को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

77
आधुनिक नैतिक समस्यायें व समाधान : प्रमुख उपनिषदों के सन्दर्भ में

श्री हरिओम शरण मुद्गल

शोध–छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राचीन काल में दर्शन धर्म के साथ अनिवार्यतया सम्पृक्त था। वर्तमान स्थिति यह है कि मनुष्य अपने निजी स्वार्थ के लिये घृणित से घृणित कार्य करने से भी नहीं चूकता। आज के युग की आवश्यकता है कुछ ऐसे विचारों की है, जिनसे ऐसे मनुष्यों का हृदय परिवर्तन हो सके जो विसंगति, दुर्व्यसनों आदि के परिणाम स्वरूप अपने वास्तविक

मनुष्यत्त्व को भूलकर पशुवत्त्व जैसा आचरण कर देते हैं। आधुनिक युग को आवश्यकता है कुछ ऐसे विचारों की जिनको अपनाकर सर्वत्र सम दृष्टि की प्राप्ति हो सकती है। यदि उपनिषदों की ओर दृष्टिपात किया जाये तो, प्राचीन मनीषियों की दृष्टि की एक झलक भी आधुनिक मनुष्य को वास्तव में मनुष्य बना सकती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में एकादशोपनिषदों के अनेक ऐसे सिद्धान्तों की चर्चा की जायेगी, जिनकी आधुनिक प्रासंगिकता की दृष्टि से व्याख्या सम्भव है एवं आधुनिक युग की अनेक नैतिक समस्याओं का समाधान इन सिद्धान्तों को अपनाकर किया जा सकता है।

उपनिषदों में प्रतिपादित विषयों– ब्रह्म का स्वरूप, जीवात्मा का स्वरूप, सृष्टि का मूल रूप क्या है ? जगत् के प्रादुर्भाव व लय का क्या स्वरूप है? आध्यात्म ज्ञान की क्या आवश्यकता है? मोक्ष प्राप्ति के क्या साधन है? ब्रह्म साक्षात्कार के क्या लाभ हैं? इत्यादि के आधार पर यह कहना कि आधुनिक युग उपनिषदों से अत्यन्त प्रभावित है, समीचीन प्रतीत नहीं होता। उपनिषदों का आधुनिक सन्दर्भ में अत्यन्त महत्त्व व प्रासंगिकता है। प्रस्तुत शोध–पत्र आधुनिक युग के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जायेगा, जिसमें उपनिषदिक सिद्धान्तों द्वारा आधुनिक मानव की नैतिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास लक्ष्यभूत होगा। यह सर्वतोभावेन कथनीय है कि उपनिषदों के सम्यक अनुशीलन व जीवन–दर्शन के आत्मसात्करण के द्वारा ही अमनुष्य को मनुष्य बनाया जा सकता है। इसी सन्दर्भ में विभिन्न पक्षों पर विचार किया जायेगा– १. भोग और त्याग का समन्वय, २. समदृष्टि का विकास, ३. ब्रह्मचर्य पालन, ४. मनुष्य जन्म का साफल्य ब्रह्मप्राप्ति से ही, ५. सत्सङ्गति का उपदेश, ६. सत्य की पराकाष्ठा, ७. सङ्कल्प शुद्धि से विचार शुद्धि, ८. अन्न की महिमा, ९. जीवनदर्शन संबंधी विभिन्न उपदेश। इन सभी की विस्तृत व्याख्या से एक नवीन व उत्तम जीवन–दर्शन का विकास होगा, जिसे शोधपत्र मे समीचीनतया निरुपित किया जायेगा।

78

नैतिकता प्रसारण में आचार्य की वेदसम्मत भूमिका

डॉ. कामना विमल

दौलत राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

यदि किसी समाज को उन्नत बनाना हो, तो सर्वप्रथम उस समाज के विद्यार्थियों में नैतिक संस्कारों का आरोपण अनिवार्य हैं। ऐसे वह समाज स्वतः ही सन्मार्गोन्मुख हो जाता है। विद्यार्थियों के नैतिक उन्नयन का दायित्व गुरूत्रय द्वारा वहन किया जाता है। स्वयं अग्निरूप अर्थात् तेजस्वी एवं प्रकाशवान् होकर, ये गुरु विद्यार्थियों को प्रकाशित एवं प्रेरित करते हैं– *'अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वन्यत्रिणम्'*। दक्षिणाग्निरूप माता पाँच वर्षों तक बच्चे का चरित्र निर्माण करती है। आठ वर्ष की आयुपर्यन्त बच्चे में शिष्टाचार का आधान पिता का कर्त्तव्य है। आचार्य पच्चीस वर्ष की आयुपर्यन्त विभिन्न ज्ञान–विज्ञानों के प्रकटीकरण के माध्यम से उसके व्यक्तित्व निर्माण एवं विकास में सहायक होता है। *'सा विद्या या विमुक्तये'*– अतः आचार्य माता पिता से भी मान्यतर होता है– *'स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म शरीरमेव मातापितरौ जनयत।'* विद्यार्थी में आचार–स्थापना, दुर्गुण–निवारण, सद्गुण–विकास आचार्य के ही कर्तव्य हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में आचार्य एवं विद्यार्थी के सम्बन्ध में आचार्य को प्रमुख बताया गया है– *'आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्'*। ऐसे वह 'सुरेतस्' एवं 'द्यौ' स्वरूप आचार्य विद्यार्थियों में 'पञ्चौदन' का परिपाक करता है। इस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा स्वतः एवं सरलतापूर्वक स्वावलम्बन क्षमता, उत्तरदायित्व भावना, सम–विषम परिस्थितियों में निर्णय एवं कार्यसंपादन क्षमता आदि सीख लिए जाते हैं। समष्टि–व्यष्टि के ज्ञान के कारण उनमें स्वार्थपरता एवं उच्छृंखलता जैसे दुर्गुणों का निरोध कर दिया जाता है। आचार्य अपने विद्यार्थियों को स्वयं से भी आगे बढ़ते देखने की इच्छा करता है– *'शिष्यादिच्छेत्पराजयमिति'*।

विद्यार्थियों में नैतिकता विकास के लिए आचार्य का भी दुर्धर्षत्व, संयमित्व एवं शीलादि से युक्त होना नितान्त अनिवार्य है। विद्यार्थियों के लिए आचार्य आदर्शस्वरूप होते हैं एवं आचार्य के आचरणगत अनेक गुणों को अनायास ही वे अपने अन्तर में धारण कर लेते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आचार्य दीक्षान्त उपदेश में विद्यार्थियों को यही उपदेश देते हैं–*'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि'*। अतः आवश्यक है कि आचार्य स्वयं सत्य, शिष्टता, अहिंसा, आत्मविश्वास जैसे संस्कारों को अपने आचरण के माध्यम से विद्यार्थियों में संप्रेषित करें। तब वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था भी नैतिक मूल्यों पर पृथक् पाठ्यक्रम के बिना ही सार्थक एवं प्रभावशाली तथा समाजोन्नायक सिद्ध हो सकेगी।

79

यजुर्वेदीय राजशास्त्रपरक नैतिकता आधुनिक सन्दर्भ में

डॉ. करुणा आर्या

दौलत राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेदों में अनेक स्थलों पर राजधर्म सम्बन्धी विचारों का विस्तृत विवेचन है, उसी श्रृंखला में यजुर्वेद में भी राजशास्त्रपरक–नैतिकता का आदर्शमय आकर्षक वर्णन है। आज का समाज यदि उन स्वार्थपरक विचारों से हटकर कर्त्तव्यपूर्ण नैतिक भावनाओं से ओतप्रोत यजुर्वैदिक राजशास्त्र की मर्यादाओं पर चलता है तो देश से अराजकता और अनैतिकता दूर हो जायेगी। यजुर्वेद के अनुसार प्रजा कहती है कि जो राष्ट्र की प्रगति के लिए इन्द्रियजित्, प्रभुस्तवक, प्रजा का दिव्यगुण विस्तारक, प्रजा का हितेच्छु, प्रजाज्ञानान्धकार–निवारक, सच्चरित्र, राष्ट्ररक्षक, राष्ट्रसंवर्धक आदि अनेक गुणों में देदीप्मान हो तथा प्रजा में जो सर्वोत्तम व्यक्तित्त्व वाला हो उसे ही राजा बनाना चाहिए– *'उपयामगृहीतोऽस्यग्नयेत्वा'* (8.47)। मानवकार्यों में ही रूचि लेने वाला, सदकार्य–व्यापृत तथा बुराइयों का क्षरण कर दीप्ति लाने वाला, प्रजा के पारस्परिक व्यवहारों, शरीर, मस्तिष्क, मन तीनों का ध्यान रख उन्नत बनाने वाला तथा प्रजा से पुत्रवत् प्रीति करने वाला ही राजा होना चाहिए– *'ध्रुवसंदं त्वा नृषदं'* (9.2)। प्रजा के विषय में कहा गया है कि व्यापक मनोवृत्ति वाली एवं नाना दुर्व्यसेनों से मुक्त। मन्त्रिपरिषद् ब्रह्मनिष्ठ लोगों के उपदेशों से निरभिमानपूर्वक राज्य को सुव्यवस्थित बनाकर राजा की सहायता करने वाले होने चाहिए। मन्त्री राष्ट्र को आगे ले चलने वाला हो, राजपुरोहित राष्ट्रहित स्वार्थ त्यागवाले हों तथा पुरोहित वानस्पतिक भोजन करने वाले हों। निर्धनता व अज्ञान का सदैव निरसन होता रहे, राज्य में कोई भी निर्धन व अतिधनी न हो, अविद्वान् न हो। राजा की कर–व्यवस्था भी नैतिकाधारपूर्ण हो आदि अनेक प्रकार की शासन व्यवस्थाओं से परिपूर्ण राजशास्त्रीय ज्ञान हमें यजुर्वेद में प्राप्त होता है।

वर्तमानकाल में देश में सुव्यवस्था एवं शान्ति की स्थापना के लिये, देश के स्थायित्व एवं उत्कर्ष के लियें, लोगों की भौतिक एवं नैतिक उन्नति के लिए तथा सर्वाङीण विकास के लिये सत्य, सदाचरण, कर्त्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, संयम, समता, सौहार्द आदि नैतिक धर्मों से युक्त यजुर्वेदीय राजशास्त्र का आश्रय लेना एवं उसकी नीतियों के अनुसार ही शासक एवं प्रजावर्ग द्वारा आचरण किया जाना ही श्रेयस्कर हैं *'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय इति '*।

80

आधुनिकता की कसौटी में वैदिक नैतिक शिक्षा

श्री ललित प्रधान आर्य

शोधच्छात्र, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेदों से लेकर लौकिक साहित्य तक सर्वत्र नैतिक शिक्षा के विषय में भारतीय चिन्तकों तथा नीतिकारों ने प्रभूत चिन्तन किया है। भारत में सदा से ही धर्म, दर्शन और नीति एक दूसरे से अपृथक् रहे हैं। यहाँ सदा यह धारणा रही है कि बिना नैतिक पवित्रता के सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। बिना श्रद्धा के आत्मा एवं परमात्मा का दर्शन या अनुभव नहीं हो सकता और बिना बुद्धि के सद्सद् विवेक तथा मुक्ति नहीं हो सकती इसलिए बुद्धि की कामना की गई है। वैदिक समाज पूर्ण रूप से नैतिक शिक्षा पर विशेष बल देता था। यथा– अहिंसा, सदाचार, एकता, श्रद्धा, दान, करुणा, मैत्री, सत्यनिष्ठा तथा सत्य बोलना। विशेषकर सत्य की महिमा पर बड़ा बल दिया गया है। जो असत्य बोलता है, ऐसा व्यक्ति यज्ञ हेतु उपयुक्त नहीं है। सत्य को वेदवत् मानकर प्रशंसा की गई है। वेदविहित मानव के कर्म ही उसे इस लोक में उन्नति प्रदान करते हैं तथा परलोक में मोक्षप्रद होते हैं, अतः स्थान–स्थान पर मानव को दुष्कृत्यों से बचाने का निर्देश है। पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति न्याय तथा सत्य के पथ पर चलकर और पाप से बचकर ही होता थी। उस समय यह दृढ़ विश्वास था कि विश्व में एक ऐसी शक्ति काम कर रही है, जो संसार को सुचारु रूप से न्यायपूर्वक चला रही है, उसका नाम ऋत है– *'सत्यनोत्तम्भिता भूमिः'* (ऋग्वेद 10.190)

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋत और सत्य के अनुसार चलकर पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति वेदकालीन मानव का नैतिक आदर्श था और उसने जीवन के प्रत्येक कार्य को इसके अनुसार ढालने का प्रयत्न किया था। प्रश्न है

कि क्या वैदिकालीन कर्त्तव्याकर्त्तव्यता अब उपयोगी नहीं है। नैतिकता के मुख्य आधार क्या है? नैतिकता के स्रोत क्या हैं? क्या नैतिकता सिर्फ व्यक्तिगत आदर्शवाद है या सामाजिक प्रश्न? विभिन्न प्रकार के विचारों को प्रस्तुत शोधपत्र में उपस्थापित कर चिन्तन करने का प्रयास किया गया है।

81

वेदकालीन राजव्यवस्था का नैतिक मूल्यांकन : वर्तमान 'सुशासन' के सन्दर्भ में

श्री मनीष कुमार त्रिपाठी

शोधच्छात्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद (उ.प्र.)

वर्तमान वैश्विक परिवेश में 'सुशासन' की अवधारणा ने महत्वपूर्ण केन्द्रीय बिन्दु के रूप में स्थान अर्जित किया है। 'सुशासन' से तात्पर्य है– अच्छा और वांछनीय शासन, विकासोन्मुखी शासन, लोककल्याणपरक शासन। सुशासन एक मूल्यपरक अर्थात् आदर्श अवधारणा है, जिसके अपने मानदण्ड है। इसका सम्बन्ध सहभागिता, समावेशिता, संवेदनशीलता, समदृष्टि, पारदर्शिता, उत्तरादायित्व, विधि के शासन, मानव अधिकारों और मानव विकास से है। एक वाक्य में कहे तो समाज के प्रत्येक स्तर की समानता से है, जनकल्याण से है चाहे वह वृद्ध हो या युवा, बालक हो या बालिका, किसान हो या व्यापारी, अल्पसंख्यक हो या बहुसंख्यक। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के हितों की सुरक्षा सम्भव हो सकेगी, सभी विकास की मुख्य धारा से जुड़ सकेंगे, उनकी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव होगी, और वे देश कल्याण, विश्वकल्याण में भागीदार बन सकेगे। सुशासन के केन्द्रीय बिन्दुओं को न केवल भारतीय अपितु वैश्विक स्तर पर भी वास्तविक रूप में लागू करने की आवश्यकता को बल मिला है।

उल्लेखनीय है कि सुशासन की यह अवधारणा सर्वथा नवीन नहीं है, अपितु वैदिक काल से ही इसकी अवधारणा देखी जा सकती हैं। जहाँ राजतन्त्रात्मक शासनपद्धति होने के बावजूद राजा और उसकी मन्त्रिपरिषद् प्रजाजनों के कल्याण, उनकी सम्पन्नता और सुखसमृद्धि के लिए सदैव तत्पर रहना, अपना नैतिक कर्त्तव्य मानती थी। समाज के प्रत्येक वर्ग को समान अधिकार उपलब्ध कराना, स्त्रियों की सुदृढ़ स्थिति, निम्न वर्गों के हितों की सुरक्षा आदि तात्कलीन शासनगत नैतिकता के आधार स्तम्भ थे। इस कारण वर्तमान की भांति स्त्रियों, वृद्धों, बच्चों, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों/जनजातियों आदि के हितों को संरक्षित करने हेतु अलग से राष्ट्रिय महिला आयोग, राष्ट्रिय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रिय मानवाधिकार आयोग, अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग, सूचना का अधिकार, बाल अधिकार संरक्षण अधिनियम आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती थी अपितु शासन पद्धति के नैतिक आदर्शों के आधार पर सुशासन के लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव होती थी। अतः वर्तमान संदर्भ में वास्तविक अर्थों में लोकतन्त्र अर्थात् 'जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन' की अवधारणा पुष्ट करने हेतु सुशासन के उपर्युक्त केन्द्रीय बिन्दुओं को अपनाकर जनता का कल्याण सुनिश्चित करना शासन–पद्धति का प्रमुख लक्ष्य होना अपेक्षित है। जिसके लिए वैदिक शासन–पद्धति एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करती है।

82

शिक्षा में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना "भारतीय दृष्टि"

श्री नीरज कुमार

शोधच्छात्र, संस्कृत, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। शिक्षा के बिना मनुष्य का मनुष्यत्व ही सिद्ध नहीं हो सकता। भारतीय सभ्यता में शिक्षा व उनके नैतिक मूल्यों का बहुत महत्व है। यहाँ शिक्षा को प्रत्यक्ष अनुभूति माना है। वेदों में शिक्षा का उद्देश्य अन्तःकरण की दूषित भावनाओं को शुद्ध करना था। वेदों में प्रायः ऐसी शिक्षा पर बल दिया गया है, जिससे अज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। आधुनिक काल में शिक्षा का मुख्य प्रयोजन ऐहिक जीवन की व्यावहारिक

समस्याएँ हैं जबकि वैदिक शिक्षां का अधिकांश सम्बन्ध पारमार्थिक चिंतन से रहा है। श्री अरविन्दों के अनुसार नैतिक जीवन का लक्ष्य मानवता का कल्याण है परन्तु यह कल्याण मात्र लौकिक नहीं है, अपितु आध्यात्मिक भी है, जो कि कोई पारलौकिक उपलब्धि नही है। यह इसी पृथ्वी पर संभव है। यथा– कठोपनिषद (2.1.2) में श्रेय को प्रेम से सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

दुखः है कि आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा–प्रणाली के द्वारा शिक्षार्थियों का न तो शारीरिक तेज विकसित हो रहा है और न ही नैतिक बल, केवल अनैतिक भैतिकता का प्रभाव बढ़ रहा है। यदि वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में मानव का कल्याण सम्भव हो पाता तो समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अशान्ति, चोरी, डकैती, हिंसा, आतंकवाद इत्यादि का प्रचार प्रसार न हो रहा होता इसलिए जरूरत है वर्तमान शिक्षा प्रणाली में वैदिक शिक्षा के समावेश की। आज शिक्षा की परिभाषा बदलते परिवेश के साथ अपने आप बदल सी गयी है। जिसके फलस्वरूप ही अपराधिक प्रवृत्तियों का द्रुतगति से बढना एवं आर्थिक व सामाजिक अपराधों का आधिक्य हो रहा है। वैदिक शिक्षा का उद्देश्य मानव में अन्तःशक्ति को समुचित रूप से जागृत करना था। इसी वेदपरक 'भारतीय दृष्टि' पर प्रस्तुत शोध–पत्र में विचार किया जायेगा।

83

वेदों में शिक्षा–पद्धति : वर्तमान शिक्षा के सन्दर्भ में

कु. निर्मला देवी

शोध–छात्रा, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केंद्र, दिल्ली

'शिक्ष्यते या सा शिक्षा' शिक्षा का मनुष्य के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा का लक्ष्य ही मानव को शिक्षित तथा सभ्य बनाना है। पुरातन शिक्षा–पद्धति में गुरूकुलों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। तत्कालीन समाज में विद्यार्थी को अस्त्र–शस्त्र–विद्या, चिकित्सा–विद्या तथा वेदों का सम्पूर्ण रूप से अध्यापन करवाया जाता था, परन्तु आधुनिक समाज में गुरुकुल जीर्ण–सी दशा में चल रहे हैं, जिससे शिक्षा पर प्रभूत प्रभाव पड़ा है। वेद सम्पूर्ण विद्याओं का आधार स्त्रोत हैं। ब्राह्मण, आरण्यक प्रभृति शास्त्रों का उद्भव इन्हीं से ही हुआ है। गुरु शिष्य–परम्परा से ही वैदिककाल में अध्ययन–अध्यापन होता था। आधुनिक–काल में विचारित शिक्षा नीतियाँ कैसी रही तथा इन सबका शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा, पुरातन शिक्षा तथा नूतन शिक्षा में क्या–क्या भिन्नताएँ आईं, इन सबका विवेचन करने का प्रयास किया जाएगा। आधुनिक शिक्षा में मैकाले नीति, राष्ट्रीय–शिक्षा नीतियाँ तथा किंडर–गार्डन प्रभृति पद्धतियाँ आती हैं। इसके साथ–साथ ही कोठारी आयोग, विनोबा भावे तथा महात्मा गांधी जैसे शिक्षाविदों सम्बंधित शैक्षिक विचारों को विचारित करने का प्रयास प्रस्तुत शोध–पत्र में किया जायेगा।

84

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : वैश्विक परिदृश्य

श्री पवन कुमार गुप्त

शोध–छात्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ, (उ.प्र.)

समग्र वैदिक वाङ्मय जीवन मूल्य परक शिक्षा एवं नैतिकता से परिपूर्ण है। वेदों के प्रत्येक मन्त्र मनुष्य के जीवन को प्रेरणा, सद्बुद्धि व सद्गति प्रदान करने वाले हैं, जिसके माध्यम से व्यक्ति सदाचार, अहिंसा, पवित्रता, सत्य आदि जीवन मूल्य सीखता है। वैदिक साहित्य में *'वसुधैव कुटुम्बकम्'*, *'सत्यं वद'*, *'आचार्य देवोभव'*, *'मातृ देवोभव'* आदि जीवन मूल्यों के सार्वभौम स्वरूप का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। *'संगच्छध्वं संवद्ध्वं सं वो मंनासिजानताम्'* इस मन्त्र के द्वारा मानवतावादी शिक्षा की स्थापना की गयी है। *'यत विश्वं भवति एक नीडम्'* के माध्यम से वैश्वीकरण की संकल्पना परिलक्षित होती है। वैदिक संस्कृति एवं साहित्य आशावादी चिन्तन से ओतप्रोत है, वैदिक कालीन शिक्षा के जो उद्देश्य और आदर्श थे, यथा–श्रद्धा, भक्ति, सेवा–आदर, आत्मानुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिक बल आदि उनमें से अधिकांश को अपनाकर भारत में एक प्रभावशाली राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली का विकास किया जा सकता है।

वैश्विक परिदृश्य में वैदिक मन्त्रों का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रो. मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'हम भारत से क्या सीखें में वैदिक संस्कृति का साँगोपांग वर्णन करते हुए यह लिखा है कि पूरे विश्व के लिए वेद मन्त्रों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इतिहासकार यह कहते हैं कि वेद मन्त्र केवल भारतीयों के लिए ही नहीं अपितु समस्त विश्व के लिए उपयोगी है, क्योंकि ऋग्वेद के मन्त्रों का अनुशीलन एवं परिशीलन यह चरितार्थ करता है कि हमारे अस्तित्व के पीछे एक महान अस्तित्त्व है, जिसको हम स्थूल रूप से देख नहीं सकते। किन्तु प्रार्थना के द्वारा, ध्यान के द्वारा इस परमतत्त्व का अनुभव कर सकते हैं। यही कारण है कि आज वेद मन्त्रों का प्रभाव पूरे विश्व में अनुभव किया जा रहा है।

85

वैदिक वाङ्मय में मूल्यपरक शिक्षा एवं मानवाधिकार : आधुनिक सन्दर्भ में

कु. पिंकी तिवारी

शोध–छात्रा, संस्कृत, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

मानव की उन्नति में समाज की उन्नति तथा समाज की उन्नति में राष्ट्र की उन्नति निहित है। श्रृद्धा और विश्वास ही मानव जीवन में क्रियामाण एवं कृत कर्मों का आधार है। मनीषियों ने वैदिक शिक्षा से जीवन दृष्टि प्राप्त की और संसार को जीवन–दर्शन की सर्वोत्तम शिक्षा का संदेश दिया। शिक्षा प्रचीन काल से ही मूल्यपरक रही है। मूल्यपरक शिक्षा के कारण ही हमारी भारतीय संस्कृति आज भी सुरक्षित है। मूल्यपरक शिक्षा जिस पक्ष को इंगित करती है, वह अधिकार पक्ष नहीं अपितु कर्त्तव्य पक्ष है। मूल्यपरक शिक्षा पूरे मानव समाज का आधार है। मूल्यपरक शिक्षा इतनी बलवती और दृढसंस्कार युक्त होती है। जिसका अभिमन्यु जैसा उदाहरण भारतीय संस्कृति में विद्यमान है। भारतीय सस्कृति में केवल कर्म की संकल्पना है। 'अधिकार' शब्द आया भी है तो, कर्म पालन के अर्थ में। हमारा अधिकार केवल अपने कर्त्तव्य पालन का ही है– '*कर्मण्येवाधिकारस्ते*' यह सार्वभौमिक संदेश सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है। जो हमारा कर्त्तव्य है, वही दूसरे का अधिकार है। अधिकार की संकल्पना आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की देन है। आज का मानव अपने कर्त्तव्य से हटकर केवल अधिकार की बात करता है। 'मानवाधिकार' शब्द की संकल्पना लौकिक संस्कृत साहित्य की संकल्पना है, जिसका प्रथम बार प्रयोग सम्भवतः महाभारत में हुआ है।

मूल्यपरक शिक्षा में मानवाधिकारों की भूमिका अधिकार के रूप में नहीं अपितु कर्त्तव्य के रूप में रही है। मूल्यपरक शिक्षा में पर्याप्त उदारता है, जबकि अधिकार में कोई उदारता नहीं होती है। मूल्यपरक शिक्षा व्यवस्था में तीन बार संध्या पूजन की व्यबस्था हैं और मात्र एक बार भोजन की व्यवस्था है किन्तु आज सुसंस्कृत समाज में मात्र एक बार पूजन और तीन बार भोजन की व्यवस्था हो गयी है। इससे स्पष्ट हैं कि मूल्यपरक शिक्षा की समाजिक व्यवस्था बिल्कुल उलट गयी है, जिससे तमाम तरह के मतभेद और मानवाधिकार जैसी संकल्पना उभर गयी है। आवश्यकता है पुनः भारतीय संस्कृति के वेदों, उपनिषदों आदि के मौलिक अध्ययन की, जिससे कि हमारे विचार परिष्कृत हो सकें, '*वसुधैव कुटुम्बकम्*' का भाव जागृत हो सकें तथा हमारा मन शुभ संकल्पों से युक्त हो सकें फलतः मानवाधिकार जैसी संकल्पनायें स्वतः निर्मूल हो जायें।

86

स्मृतिकालीन शिक्षा व्यवस्था एवं नैतिकता

कु० पूजा गौतम

शोध–छात्रा, संस्कृत, कला संकाय, दयालबाग़ शिक्षण संस्थान, आगरा (उ.प्र.)

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वभाविक एवं सामंजस्यपूर्ण उन्नति में योगदान देती है, उसके व्यक्तित्त्व का समग्र विकास करती है। उसे जीवन व नागरिकता के कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों के लिये तैयार करती है। शिक्षा मनुष्य के विचारों व व्यवहार में परिवर्तन व परिमार्जन करती है, जो समाज व विश्व के लिये

हितकर होता है। वास्तव में शिक्षा का आशय जीवनपर्यन्त चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया से है जो बाल्यावस्था से प्रारम्भ होकर अनुभवों द्वारा सीखते हुए जीवन पर्यन्त चलती है। अतः 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखना *'शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनयेति शिक्षा'* (कल्याण शिक्षांक विशेषांक पेज नं. 190) अर्थात् प्राणी जिस साधन प्रणाली से ज्ञान उपार्जित करता है उसका नाम शिक्षा है। यह शिक्षा विकास की प्रक्रिया के रूप में प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। वैदिककाल से लेकर स्मृतिकाल तक हमें शिक्षा का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह एक आदर्श, विकसित, व प्रबन्धित शिक्षा व्यवस्था का रूप है।

स्मृतिकालीन शिक्षा व्यवस्था जहाँ आदर्श शिक्षा को प्रस्तुत करती है वहीं उस काल की शिक्षा नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों, सदाचार, व चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, कर्त्तव्य पालन की भावना के विकास, संस्कृति के संरक्षक की भावना आदि को स्वयं में समावेशित किये हुए है। स्मृतिकालीन शिक्षा में नैतिकता व सामाजिक नियमों के परिपालन हेतु संस्कारों के अन्तर्गत वेदारम्भ, उपनयन व समावर्तन जैसे संस्कारों की व्यवस्था की गयी। जिससे विद्यार्थी के व्यक्तित्व में सुचरित्र, कर्त्तव्यनिष्ठता, परिश्रमी, दृढ़ संकल्पी, जितेन्द्रिय, सदाचारी, आज्ञाकारी, सेवा करने वाले सहिष्णु आदि गुणों व्यक्तिगत विकास होता है।

स्मृतिकालीन शिक्षा विद्यार्थी की योग्यता, क्षमता एवं रूचि के अनुसार दी जाती थी। यह शिक्षा संस्कारों से परिपूर्ण थी, जो सभ्य समाज के लिये सफल सिद्ध होती थी। स्मृतिकाल में हमें शिक्षा के अन्तर्गत संस्कारों यथा उपनयन, वेदारम्भ इत्यादि का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह नैतिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, आध्यामिक मूल्यों, धार्मिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जो वर्तमान शिक्षा हेतु अत्यन्त उपादेय है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्रीय (स्मृतिकालीन) शिक्षा का जो स्वरूप हमें प्राप्त होता है, वह शैक्षिक दृष्टि के साथ–साथ नैतिक व चारित्रिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

यह आर्दश शिक्षा व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिये एक नवीन मार्ग को प्रशस्त करता है, जिससे वर्तमान शिक्षा भी सफल सिद्ध हो सके।

87

वैदिककाल के परिप्रेक्ष्य में नारी शिक्षा

कु. प्रमिला विश्वास

शोध–छात्रा, संस्कृत, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

वैदिककाल में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग ज्ञान, विद्या, विनय और अनुशासन के पयार्य के रूप में किया जाता है। वैदिककाल में नारी शिक्षा की स्थिति अच्छी थी। शिक्षा राज्य–प्रशासन के अधीन न होकर स्वतंत्र आचार्य कुलों के अधीन थी। वैदिककाल में पुरूषों के समान स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर गुरू से अभिन्न रूप में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था तथा कन्याएं भी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई यज्ञोपवीत, मौंजी, मेखला और वल्कल धारण करती थी। सुशिक्षा के कारण ही अनेक मंत्रदृष्टी ऋषिकाओं का उल्लेख आता है जिन्होंने मंत्रदर्शन में ऋषियों की समकक्षता प्राप्त की थी। ऋग्वेद में (14.01.12) स्त्री को *'ज्ञानयुक्तं वक्तृता'* विशेषण देने का कथन है। उत्तर वैदिक युग में याज्ञवल्क्य और उनकी दो पत्नियों मैत्रयी एवं गार्गी वाक्चनवी का पारस्पारिक संवाद सिद्ध कर देता है कि स्त्रियाँ वैदिक क्षमता की दृष्टि से कितनी श्रेष्ठ थी। ब्राह्मण साहित्य के अनुशीलन से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियाँ वेदाध्ययन एवं यज्ञ सम्पादन की पूर्ण अधिकारी थी।

मनु ने भी लिखा है कि बालिकाओं के लिये उपनयन संस्कार अनिवार्य है (2.66)। ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रंथों में स्त्रियों की स्थिति और अधिकार को पुरूषों के समान ही रखा एवं पुरूषों की भांति ही स्त्रियों को भी ऊंची से ऊंची शिक्षा देने पर बल दिया।

अतः निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि वैदिककाल में नारी शिक्षा का स्थान महत्वपूर्ण एवं आवश्यक था। कहा जाता है कि वर्तमान की नींव अतीत में होती है। वैदिक कालीन शिक्षा–प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वहीं है जो वैदिक काल में था।

88
A Note on *Rigveda* X.117 in the Modern Perspective

Mr. Pranabjyoti Deka
Research Student, Deptt. of Sanskrit, Gauhati University, Guwahati (Assam)

The *Rigvedic* hymn X.117 underlines the necessity of social obligation, focusing attention on hunger. The idea sought to be stressed is that gifts ultimately make the donor affluent. A person who does not share his food with those that need it enjoys it in vain. One who enjoys for himself commits a sin. This hymn, thus, is a message of philanthropy and humanity. In this hymn a quite strange and moralizing note is struck that is not found anywhere else. Therefore in this paper, an attempt will be made to highlight the ideas and thoughts which are very relevant in this modern era.

89
वैदिक नैतिक शिक्षा की वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता

श्री प्रेम बल्लभ देवली
शोध–छात्र, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रंथ हैं। ये ज्ञान विज्ञान के अक्षुण्ण स्रोत हैं। सकल विश्व के कल्याण की भावना वेदों में समाहित है। मानव को नैतिक शिक्षा से परिपक्व बनाने की वेदों में विशद् चर्चा की गई है। स्वस्थ राष्ट्र एवं स्वस्थ समाज को बनाने में नैतिक शिक्षा की क्या भूमिका रहती है? इसका वेदों में अनेक स्थलों में वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक शिक्षा–व्यवस्था प्राचीन समय से वर्तमान तक भारतीय संस्कृति की प्राण रही है। भारतीय संस्कृति को विश्व मानचित्र में एक विशिष्ट स्थान दिलाने में वैदिक नैतिक शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वैदिककालीन नैतिक शिक्षा एवं शिक्षा– पद्धति का अनुगमन करते हुए हमें वर्तमान शिक्षा–पद्धति में उन शुभ तत्त्वों का समावेश करना चाहिए, जिससे आज का समाज तथा राष्ट्र जो अनेक व्याधियों से ग्रस्त है, उसे मुक्ति मिले। किसी व्यक्ति को नैतिक शिक्षा दिए बिना शिक्षित करना उसे चतुर शैतान बनाना है। मानव जीवन मानवीय गुणों का विकास करने के लिए है, न कि व्यर्थ की शिक्षा में उलझने के लिए। शिक्षित मानव तभी शिक्षित एवं दीक्षित है, जब वह नैतिक शिक्षा से चित्र रूपी जीवन को रंगकर जीवन व्यतीत करे। यह तभी संभव हो पाएगा जब वह वैदिकी नैतिक शिक्षा को अपनाएगा। प्रस्तुत शोध–पत्र में वैदिक नैतिक शिक्षा की वर्तमान समय में क्या उपयोगिता है इस विषय में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जाएगा।

90
वैदिकशिक्षायां गुरुशिष्योराचारसंहिता

श्री पूर्णेन्दु प्रताप सिंह
शोधच्छात्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद (उ.प्र.)

भारतीयसंस्कृतौ चत्वारः पुरुषार्थाः स्वीकृताः। मोक्ष एव चरमपुरुषार्थत्वाय परिकल्प्यते। शिक्षायामपि अयमेव मुख्यमुद्देश्यम्। वैदिकवाङ्मये एतदुद्देश्यं प्राप्तुं चत्वारः आश्रमाः ऊररीकृताः। प्रथमः आश्रमः ब्रह्मचर्यं छात्रेभ्यः परमावश्यकमभिहितम्। इन्द्रियाणाम् असंयमत्वात् ब्रह्मचर्यं न सम्भवम् परिणामतः सदाचाराभावात् छात्राः सोद्देश्यं प्राप्तुं न प्रभवन्ति। वर्तमानसमये आधुनिकशिक्षापद्धतौ सदाचारशिक्षणस्य नितान्तमभावः दृश्यते। यत्किञ्चिन्महापुरुषाणां जीवनचरितेषु आचारः शिक्षते सः केवलं वाणीमात्र एव दृश्यते, तदुद्देश्यं प्राप्तुं न कोऽपि क्रियात्मकः उपायः, फलतः छात्रेषु उद्दण्डतायाः अनैतिकतायाः अध्ययनं प्रति उपेक्षायाः, गुरूजनान् प्रति अश्रद्धायाः, लक्ष्यं प्रति प्रत्यनास्थायाः बाहुल्यमनुभूयते। प्राणिमात्रहितसाधनदृष्ट्या लोकजीवनयात्राहितसाधनाय गुरुशिष्ययोराचारसंहितायाः व्यावहारिकी उपादेयता च वेदेषु सम्यक् प्रतिपादिता। वैदिकशिक्षायां

छात्रेषु ब्रह्मचर्यस्य प्रधानात्वान्नैतिकायाः क्षरणं नावलोक्यते। तत्र गुरावपि स्वशिष्यान् प्रति कर्तव्यबोधः निर्धारितः। तैत्तिरीयोपनिषदि आचार्यः अन्तेवासिनम् अनुशास्ति– *'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः'*। गुरुः आत्मचिन्तकः विचारकश्च भवेत्। गुरु छात्रस्य आध्यात्मिकः, बौद्धिकश्च जनकः स्वीक्रियते। ऋग्वेदे आचार्यः अग्निशमः मन्यते। यतो हि आचार्य एव छात्राणाम् अशुद्धान् विकारान् स्वज्ञानाग्निना, विशुद्धीकरोति, गुरुः आदर्शचरित्रवान् सत्याचरणयुक्तश्च भवितव्यः। गुरोः कर्तव्यं न सीमितमासीत्। उच्चनीचयोः, निर्धनधनिनोः विचारमकृत्वा सः तान् शिक्षयति। सः प्रखरबुद्धीन् मन्दबुद्धीन च छात्रान् समरूपेण शिक्षयति, स्वसम्पूर्णम् ज्ञानं तेभ्यः वितरति।

अनेन विवेचनेन स्पष्टमस्ति यत् सम्पूर्णे वैदिकवाङ्मये वेदाध्ययनस्य अनिवार्यता संस्तुता तथैव आचार्याणां, छात्राणां च आचारे सविशेषं बलं प्रदत्तम्। अधुना छात्रेषु यादृशी उच्छृखंलता, आचार्येषु च शिक्षणकार्यं प्रत्युपेक्षता च दृश्येते तस्य शमनं वैदिकवाङ्मये निर्दिष्टतानामाचाराणां सम्यगारोपेणैव सम्भवं येन आचार्यात् सुशिक्षां प्राप्य छात्राः राष्ट्रस्य विकासे सहयोगिनः भवेयुः तथैव गुरवोऽपि आत्मनि सदाचारं, कर्तव्यबोधं ज्ञानं, समदर्शितां चारोप्य पुनः गुरुपदं प्राप्य छात्रेषु श्रद्धायाः विषयाः भवेयुः।

91

वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य : चरित्र–निर्माण

कु. पुष्पलता वर्मा

शोध–छात्रा, बौद्धदर्शन, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ (उ.प्र.)

वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों के नैतिक चरित्र का निर्माण करना था। शिक्षा के माध्यम से वैदिक आदर्शों यथा– परोपकार, ब्रह्मचर्य, परमार्थ, सदाचार, लोकहित की भावना, सात्विक भोजन, गुरु और श्रेष्ठ जनों का आदर, कर्तव्य पालन, सत्यव्रत, धर्म के प्रति निष्ठा, श्रम के प्रति आदर, उच्च विचार आदि को छात्रों में विकसित किया जाता था। वैदिक कालीन शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों के लिए सर्वांगीण विकास पर जोर दिया जाता था, जिससे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास हो सके। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, सामाजिकता, नेतृत्स आत्मानुभूति, आत्मसम्मान, सहनशीलता, परोपकार आदि व्यक्तित्व को विकसित करने वाले गुणों का प्रवेश कराया जाता था। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में उत्तरादायित्व और आत्मनिर्णय की क्षमता का विकास किया जाता एवं विद्यार्थियों को ज्ञान देकर सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता था। वैदिक कालीन शिक्षा व्यक्तियों को आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ उन्हें जीवकोपार्जन के लिए तैयार करती थी। वैदिककाल में छात्रों को इस तरह व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता था, जिससे वे भावी जीवन को व्यवस्थित और सुचारु रूप से चलाने में समर्थ हो सकें। उन्हें जीवनोपयोगी व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता था, जैस– पशुपालन, कृषि, व्यापार, चिकित्सा, युद्धकला आदि। इससे विद्यार्थियों में सामाजिक कुशलता की वृद्धि होती थी और वे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद अपने परिवार का भरण–पोषण आसानी से कर लेते थे।

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में सामाजिक भावना का विकास करके उन्हें स्वस्थ नागरिक बनाना था। विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा पूर्ण करके ब्रह्मचर्य आश्रम के कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कराया जाता था, जिससे वे अपने पारिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझ सकें तथा समाज व राष्ट्र के उत्थान में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो सके। आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान का बोध कराकर विद्यार्थियों को तत्कालीन जीवन दर्शन के परमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए तैयार किया जाता था। वर्तमान युग की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ पहले से भिन्न हैं। आधुनिक नवोदित समाज लोकतान्त्रिक ढाँचे में ढल रहा है। इस समय मानव का जीवन पूर्णतया भौतिकवादी हो गया है। शिक्षा का उद्देश्य भौतिक समृद्धि को प्राप्त करना है। आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा से अनुशासनहीनता, तनाव, और अशान्त वातावरण पैदा हो गया है। इसलिए आज की शिक्षा में आध्यात्मिक पक्ष को जोड़ना आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा–पद्धति में विद्यार्थियों के चरित्र–निर्माण पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा से प्रेरणा लेकर विद्यार्थियों के चरित्र–निर्माण की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

92
प्राचीन भारत में संचार साधन और उनकी शिक्षा

श्री रजनीकान्त मिश्रा

एम. ए.–छात्र, गुरू जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

प्राचीन भारत में अगर हम संचार के साधनों की बात करें तो मेघों को हरकारा बनाने वाले कालिदास का नाम सबसे पहले सामने आता है, जिन्होनें मेघदूत जैसी कालजयी काव्यकृति का सृजन कर डाला। हालांकि कबूतरों को हरकारा बनाने की परम्परा तो कालिदास से भी बहुत प्राचीन है। चंद्रगुप्त मौर्य के वक्त यानी ईसा पूर्व तीसरी और चौथी सदी में कबूतर खास हरकारे थे। कबूतर एकबार देखा हुआ रास्ता कभी नहीं भूलते। इसी गुण के चलते उन्हें संदेशवाहक बनाया गया। प्राचीन भारत में राजा अपनी प्रजा के साथ संचार कायम करने के लिए गुप्तचर व्यवस्था पर पूरी तरह से आश्रित रहता था तथा अपने निर्देशों और विचारों को वह शिलाखंडों, ताम्रपत्रों आदि पर अंकित कराकर प्रसारित किया करता था। राजाज्ञा को भोजपत्रों पर अंकित कराकर जनसाधारण के मध्य प्रसारित किया जाता था। भोजपत्रों के माध्यम से ही एक राजा दूसरे राजा को संदेशभेजने का काम करते थे, इसके लिए राजा के विशेष दूत नियुक्त होते थे जो घोड़ों के जरिए सैकड़ों मील की दूरी तय कर दूसरे राजा तक समय पर संदेश पहुंचा देते थे। राजा अपनी प्रजा तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए हरकारों के जरिए मुनादी करते थे। आज भी विक्रमादित्य, सम्राट अशोक और हर्षवर्धन के काल के जो शिलालेख मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि प्राचीन काल में संचार का मार्ग कितना मुश्किल था। धीरे धीरे आधुनिक विज्ञान में विकास होने से संचार के साधनों का भी विकास होता गया, आजादी के आंदोलन में देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से जो अलख जगाई गई उसने ब्रिटिश हुकूमत की नींव हिला दी, और अंत में ब्रिटिश सरकार को हिंदुस्तान को आजाद करना पड़ा, अब ऐसा समय आ गया है जब संचार के लिए समाचारपत्र, पत्रिकाओं के अलावा रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, सैटेलाइट और इंटरनेट जैसे अनेक साधन उपलब्ध हैं। लेकिन अब इन आधुनिक संचार साधनों के उपयोग में हम अपने उद्देश्य से भटक रहे हैं, बाजारीकरण के इस युग में संचार के साधनों का इस्तेमाल सामाजिक सृजन और नैतिकता को बढ़ावा देने के बजाय हम बाजारीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। प्रस्तुत शोध–आलेख मैं इसी संदर्भ की विस्तार से व्याख्या की जायेगी।

93
वैदिक नैतिक कर्त्तव्यों की प्रासंगिकता

कु. रक्षिता

शोध–छात्रा, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानव जन्म पूर्वार्जित सत्कर्मों का फल है, अतः इसकी सफलता के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए नैतिक कर्त्तव्यों को जीवन में अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। वेदों में नैतिक कर्त्तव्यों के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं। नैतिक कर्त्तव्यों में सर्वप्रथम सत्य की शिक्षा दी गई है। सत्य का मार्ग व्यक्ति, परिवार, समाज सभी के लिए उपादेय है। उच्चकोटि के व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से सत्य का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है– *'ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः'* (यजुर्वेद 7.45)। सत्य के बाद नैतिक कर्त्तव्यों में सुमति को जीवन की आधारशिला माना गया है। सुमति के द्वारा ही मनुष्य लोकहित, समाजहित और राष्ट्रहित की कामना करता है– *'तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्'* (यजुर्वेद 17.74)। आत्मिक बल मनुष्य की आन्तरिक शक्ति है, इसके द्वारा ही मनुष्य अजेय होता है। सूर्य के तुल्य नियमित जीवन बिताकर ओजस्वी होने की कामना की गई है। आत्मिक बल, ओजस्विता आदि गुणों का आधार मन की पवित्रता को कहा है। प्रत्येक मनुष्य को इन्द्रियों पर संयम करके शुभ विचारों को ग्रहण करना चाहिए। इससे मनुष्य का शरीर हृष्ट–पुष्ट होगा और आयु बढ़ेगी। *'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।'* (यजुर्वेद 25.21, ऋग्वेद 1.9.8)। अतः हमें वेदों का सामीप्य प्राप्त करके अपने जीवन को उन्नत एवं विकसित बनाना चाहिए। इससे एक सशक्त, समृद्ध, उज्जवल और विश्वशान्ति सहयोगी राष्ट्र का निर्माण होगा। अतः नैतिक मूल्यों की शिक्षा प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक में आवश्यक होनी चाहिए।

94
ईशावास्योपनिषद्–नैतिक शिक्षा और मानव कल्याण

कु. रीना कुमारी

शोध–छात्रा, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उपनिषदों में मौलिक–विचार एवं शिक्षाप्रद–उपदेश हैं, जो आज भी मानव की दार्शनिक जिज्ञासा को शान्त करने एवं सत्य का दर्शन कराने में समर्थ है। वर्तमान काल में भौतिकवाद, अवसरवाद, भोगवाद, वैयक्तिकवाद इतना बढ़ गया है कि इस कारण समाज में अशान्ति, घृणा, हिंसा, अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार, भेद–भाव, बेरोज़गारी इत्यादि दोष उत्पन्न हो गये हैं। इन दोषों का समाधन उपनिषदों में वर्णित सुख–शान्ति, प्रेम, दया, न्याय, सदाचार, समानता, समन्वय आदि नैतिक मूल्यों द्वारा किया जा सकता है। वर्तमान एवं भविष्य जगत् में पूर्णरूप से वास्तविक शान्ति के लिए उपनिषदों की नैतिक शिक्षा तथा साधनों का अनुकरण आवश्यक है। जब तक उपनिषदों के श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन होते थे, तब तक राष्ट्र में सर्वत्र सुख–शान्ति स्थापित थी। जब से भारतवर्ष उपनिषदों के उपदेश पर ध्यान न देकर पाश्चात्य राष्ट्रों की भाँति भौतिकवाद एवं नास्तिकता का अन्ध अनुकरण करने में तत्पर हुआ, तभी से यहाँ द्ररिद्रता, रागद्वेष इत्यादि दोष उत्पन्न होने लगे। यदि अब भी भारतवासी विवेक से काम लेकर अपने पूर्वज महर्षियों के बताए हुए सन्मार्ग का आश्रय ले और उपनिषदों की शरण ग्रहण करें तो निश्चय ही समस्त प्रकार की उन्नति एवं परम शान्ति प्राप्त हो सकती है।

उपनिषद् चिरप्रदीप्त वह ज्ञान–दीपक है जो सृष्टि के आदि से प्रकाश देता चला आ रहा है और प्रलयपर्यन्त पूर्ववत् प्रकाशित रहेगा। उसके प्रकाश में वह अमरत्व है जिसने सनातन आर्य वैदिक धर्म के मूल में सिंचन किया है। अपौरुषेय वेद का अन्तिम अध्याय रूप यह उपनिषद्, ज्ञान का आदि स्रोत एवं विद्या का अक्षय भण्डार है। उपनिषदों द्वारा पाठक एवं श्रोता गणों को ब्रह्म–विद्या, आत्म–विद्या, निष्काम–भाव, मोक्ष इत्यादि का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु 'ईशावास्योपनिषद्' के माध्यम से नैतिक शिक्षा का उपदेश मिलता है। इस उपनिषद् के प्रथम तीन मन्त्रों में कहा गया है– *'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः', 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः', 'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन'*। उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा हमें यह शिक्षा मिलती है कि ईश्वर में आस्था, दूसरों के धन के प्रति अनासक्ति, सद्व्यवहार, समन्वय भावना, सभी वस्तुओं का त्याग पूर्णक भोग, लोभ का त्याग, सब धन राष्ट्र का है, कुशलतापूर्वक कार्य करने की प्रेरणा, व्यक्ति एवं समाज का मधुर सम्बन्ध, अनुशासन एवं निष्काम भाव से कर्म करते हुए सौ वर्ष की आयु प्राप्ति की इच्छा करनी चाहिए।

95
वेदों में वर्णित विभिन्न शिक्षणीय विषय

कु. रेखा सिंह

शोध–छात्रा, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

'न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं तु विद्यते। निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात्। समस्त वेदाङ्ग, दर्शनग्रन्थ, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद्, उपवेद आदि का मूल वेद है। वेदों में व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सभी विद्याओं का समावेश है। व्यक्ति, परिवार, समाज, पशु–पक्षी, कृषि, उद्योग, यातायात, भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, गणितशास्त्र, अंतरिक्ष–विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, ऋतु–विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, शिक्षा, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, काव्यशास्त्र आदि ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जो वेदों में उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत शोधपत्र में वेदों में वर्णित शिक्षणीय विषयों के संक्षिप्त परिचय के साथ वेदों में मनोविज्ञान पर विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा। यथा– मन का स्वरूप, मन की गति एवं शक्ति, मूलप्रवृत्तियाँ, स्वप्न और सुषुप्ति आदि। इस शोधपत्र में अथर्ववेद के षष्ठ–काण्ड में वर्णित रोग एवं रोगापचारों पर भी चर्चा की जाएगी। यथा– ज्वर–रोग, बलास–रोग, केश–रोग, रक्तस्राव, वात–रोग, गण्डमाला–रोग, कास–रोग, उन्माद–रोग, सूर्य–किरण–चिकित्सा, सर्पविष–चिकित्सा, गुप्त–रोग। तथा इन दोनों विषयों की वर्तमान प्रासङ्गिकता पर भी विचार किया जाएगा।

96
शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. रेनू सैनी
मेरठ

शिक्षा जीवन में उत्कर्ष लाती है। शिक्षा का अर्थ मात्र डिग्री हासिल करना नहीं है बल्कि शिक्षा का मूल उद्देश्य समग्र व्यक्तित्व–विकास है, जिसमें आत्मोन्नति प्रधान है। और आत्मोन्नति तभी सम्भव है, जब व्यक्ति में नैतिक या मानवीय मूल्यों का आधान हो। परन्तु वर्तमान शिक्षा में आत्मिक उन्नति गौण हो गई है। व्यक्तित्व निर्माण एवं समाज कल्याण के लिये नैतिकता व्यक्ति के आचरण द्वारा परिलक्षित होती है। अतः श्रेष्ठ जीवन निर्माण के लिये आचार–शिक्षा परमावश्यक है। वर्तमान परिवेश में शिक्षा तो प्राप्त हो रही है, लेकिन उससे केवल ज्ञान और तकनीक का ही अर्जन हो रहा है।

नैतिकता और सदाचरण कोसों दूर हो गये हैं। सत्य, प्रेम, दया, दान, चरित्र, मृदुभाषण के अभाव में व्यक्ति का अन्तस् सूख गया है, जिससे मानवता नष्ट हो रही है। आज व्यक्ति देश तथा समाज की बात तो छोड़ो, उक्त गुणों के अभाव में अपने परिवार से भी दूर हो रहा है। अतः ऐसे परिवेश में वैदिक शिक्षा–मनोविज्ञान एवं उसके उद्देश्यों का परिशीलन अति आवश्यक है।

97
नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में वेदों में निहित वैवाहिक चिन्तन

कु. ऋचा दीक्षित
शोध–छात्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वर्तमान में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वैवाहिक परम्पराओं में भी अनेक अनुपयोगी तत्त्वों को देखा जा सकता है, जिन्हें निकालकर नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा करना नितान्त आवश्यक है, जिससे कि हमारी नैतिकता, प्रेम, सहयोग, समर्पण की भावना का विकास हो सके। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक समय के साथ–साथ इस वैवाहिक परम्परा में नितान्त बदलाव देखे जा सकते हैं जो कि वर्तमान समय में सबसे घातक स्तर पर हैं। वेदों में जिस प्रकार से विवाह को एक संस्था, एक संस्कार माना जाता था जिसका पालन धर्म और निष्ठा के साथ किया जाता था, वहीं आज विवाह एक समझौता बन कर रह गया है। विवाह के नाम पर अनेक कुप्रथाओं, रीतियों और परम्पराओं को समाज से जोड़ा गया है।

वैदिक काल में स्त्री को विवाहोपरान्त ननदों और देवरों सहित सम्पूर्ण परिवार के लिए 'गृह साम्राज्ञी' के गौरवास्पद पद पर प्रतिष्ठित किया जाता था *'सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव'* (ऋग्वेद, 10.85.46)। परन्तु वर्तमान में विवाहोपरान्त भी स्त्री को सम्मान, प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। वैदिक काल में बाल–विवाह की भी प्रथा नहीं थी, परन्तु वर्तमान में यदा–कदा बाल–विवाह जैसे प्रकरण सामने आते रहते हैं।

वर्तमान में एक विधवा को समाज यह अधिकार नहीं देता कि वह स्वतंत्रता के साथ अपना जीवन निर्वाह कर सके परन्तु वैदिक काल में विधवाओं को यह अधिकार था कि वह स्वेच्छा से दूसरे पति का चुनाव कर सके। वर्तमान समय में अगर कोई लड़की स्वेच्छा से अपने पति का चुनाव करती है तो इसे अत्यन्त निन्दनीय कार्य समझ कर लोग मृत्युदण्ड तक देने में संकोच नहीं करते हैं। वहीं वैदिक काल में लड़की को स्वेच्छा से अपने पति का चयन करने का अधिकार था।

प्रस्तुत शोध पत्र में नैतिकता के उचित मूल्यों, मापदण्डों के साथ स्वच्छ वातावरण में विवाह जैसे संस्कार को वेदों में बताई गई पद्धति, रीति, धर्म, निष्ठा, विश्वास के साथ पुनः लागू करने पर बल दिया गया है।

98

हितोपदेश में वर्णित नैतिक शिक्षाओं की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

श्री रीतेश प्रसाद टम्टा

शोध–छात्र, संस्कृत, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

हितोपदेश में नैतिक शिक्षा या नैतिक उपदेशों को सरलता से समझाने के लिए ही कहानियों को माध्यम बनाया है– *'कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते'*। इन कहानियों में उपदेशात्मकता अधिक होने के कारण इसे हितोपदेश कहा गया है। हितोपदेश को चार परिच्छेदों में विभाजित किया गया है– 1. मित्रलाभ, 2. सुहृदभेद, 3. विग्रह, 4. सन्धि। मित्रलाभ में मित्र का महत्त्व, सत्संगति, क्रोध न करना, सच्चे मित्र के गुण तथा सुहृद भेद में उद्यमी पुरूष के गुण, मधुर वचन बोलना, धन की महत्ता, अपव्ययी होना, आदि नैतिक शिक्षाएं दी गई हैं। इसी प्रकार विग्रह में मूर्खों को उपदेश न देना, अवसर देखकर बोलना, कुसंगति न करना एवं सन्धि में संकट के समय वाणी में विराम देना, बिना विचारे कार्य न करना, दुर्जनों को उपदेश न देने की नैतिक शिक्षाएं वर्णित हैं। हितोपदेश में पशु–पक्षियों, अर्थात् वानर, सिंह, उल्लू, कौआ, मछली व सांप आदि की कथाओं के माध्यम से नैतिक शिक्षा का ज्ञान कराया गया है। वर्तमान समय में चोरी, डकैती, हत्या, अपहरण, भ्रष्टाचार, बलात्कार जैसी समस्याओं के समाधान हेतु हितोपदेश की कथाओं में वर्णित नैतिक शिक्षाओं को अनेक पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में प्रकाशित कर एवं विभिन्न टीवी चैनलों में धारावाहिकों के माध्यम से प्रसारित किया जा सकता है। जो हमारे व्यावहारिक जीवन के लिए लाभकारी है।

99

वेदों में शिष्य का स्वरूप

कु. साधना आर्य

बहादुरगढ़, (हरियाणा)

वैदिक साहित्य में शिष्य के समानार्थक अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जिनकी व्युत्पत्तियों में ही शिष्य की विशिष्टताओं का वर्णन है। उपनयन संस्कार से छात्र गुरुचरणों में बैठकर वेदों का अध्ययन करते थे। गुरुकुल में विद्या–प्राप्ति के साथ–साथ गुरु की परिचर्या में भी संलग्न रहते थे। जिससे उनके व्यक्तित्व में सेवा, शुश्रूषा आदि गुण भी विकसित हो जाते थे। शिष्यों के गुण तथा अवगुणों की परीक्षा करके ही उन्हें विद्या प्रदान की जाती थी। ब्रह्मचारी शिष्य भोजन हेतु भिक्षाचरण करता था। मनु ने मनुस्मृति में शिष्यों के कार्यों का विस्तृत रूप से विधान किया है। ज्ञानसम्पन्न गुरु से शिक्षा ग्रहण करते हुए विद्यार्थी जीवन में एकाग्रता, विनम्रता एवं शुश्रूषा आदि गुणों को धारण करता था। गुरुकुल में रहते हुए यथाशक्ति सेवा करना छात्र का कर्त्तव्य था। ब्रह्मचर्य आश्रम का कठोर जीवन उसके दुर्गुणों को नष्ट करके उसे एक सुसंस्कृत रूप देता था, जो एक सभ्य समाज के निर्माण में सहायक होता था। वैदिक युगीन शिष्य की आधुनिक जीवन में प्रासङ्गिता का प्रतिपादन इस शोधपत्र में किया जाएगा।

100

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तनः आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. संजय कुमार

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, अलीगंज लखनऊ (उ.प्र.)

मानव व्यवहारों के परिवर्तन में शिक्षा का अभूतपूर्व योगदान है, जिसके कारण वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल के विभिन्न दार्शनिकों ने सामाजिक आवश्यकतानुसार शिक्षा–तत्त्वों के विवेचन द्वारा मानव–जीवन में उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। शिक्षा ही जीवन है और जीवन ही शिक्षा है। निश्चय ही यह शिक्षा की अवस्था जो आधुनिक रूप में प्राप्त हुई है, वह अनायास ही नहीं है अपितु उसका निश्चित क्रम और इतिहास है, जिसके जानने, संरक्षित

करने और वृद्धि को प्राप्त कराने के लिए अनुभवजन्य ज्ञान को लिपि के रूप में संचित करने की आवश्यकता है। नैतिक शिक्षा मनुष्य के जीवन में बहुत आवश्यक है, इसका आरम्भ मनुष्य के बाल्यकाल से हो जाता है। सब पर दया करना, सबको अपने समान समझते हुए प्रेम करना, किसी की बुराई न करना इत्यादि कार्य नैतिकता या नैतिक मूल्य कहलाते हैं।

सभी वैदिक धर्मग्रन्थों का उद्देश्य मनुष्य के अन्दर नैतिक गुणों का विकास करना रहा है। जैसे– *'स्वस्ति पन्थामनु चरेम्'* (ऋग्वेद 5.15.51) अथवा *'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'* (यजुर्वेद 34.1)। माता–पिता को बालक का प्रथम गुरु स्वीकार किया गया है। व्यवहार में भी देखा जाता है कि यदि बालक का पारिवारिक परिप्रेक्ष्य स्वच्छ अनुशासनबद्ध और धार्मिक क्रियाओं से युक्त है, तो निश्चय ही बालक का अन्तःकरण निर्मल भावनाओं से ओतप्रोत होगा। इसी प्रकार ऋग्वेद (5.82.5) में *'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव'* अर्थात् हे सारे जगत् के उत्पादक प्रेरक देव तू हमारे सारे दुराचरणों को दूर कर दे और सभी कल्याणकारी गुण हममें भर दे।

आधुनिक समय में मनुष्य ही नहीं अपितु सन्त, नेता, विद्वान्, समाज सुधारक अपनी मर्यादाओं को भूलकर अनैतिक हो रहे हैं, इससे बचने के लिए यजुर्वेद (4.28) में प्रार्थना की गयी है। आज का मनुष्य धोखाधड़ी, लूट, बेईमानी, चोरी, चालाकी, झूठ, जालसाजी आदि के कारण असत् मार्ग पर चल रहा है। वैदिक साहित्य में हमें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी गई है– *'मा प्र गाम पथो वयम्'* (ऋग्वेद 10.57.1)। आधुनिक शिक्षा में नैतिक मूल्यों को महत्त्व दिया जाता, तो विद्यार्थी सही मायने में मनुष्य बन सकता है।

101
Ethical Progress Through Community Singing of *Samveda* : A Contemporary Outlook

Ms. Sanskrita Misra

Ph.D. Student, Sanskrit, Lucknow University, Lucknow (U.P.)

Ethics is not a subject but practice. One cannot master it only by studying it; one has to live it too. Ethical theories, thought important, are incomplete unless they are followed by way of practicing them. Indian oriental *shastra*s demonstrate a commendable balance between objective theories and interactive ways of practicing them. That's where the balance of *Rigveda* and other Vedas comes into the picture. In fact they complement each other, which we can see in almost every aspect of life.

During this presentation we'll primarily limit our scope to balance of *Rigveda* and *Samveda* as theory and practice. From many aspects that they cover, we'll majorly focus of ethical aspects. We'll also touch some of the educational aspects, as in Vedic traditions these two (education and ethics) are very closely related to each other. Briefly putting : we'll objectively examine how *Samveda* and its poetics (inspired and dependent on Rigvedic theories) helped and guided ethical progress in Vedic society. We'll stress more on those ethical aspects which hold greater contemporary significance.

Much of post-*Rigveda shashtra*s is Rigvedic-theories-in-action. *Samveda* is one of the greatest *shastra*s in that aspect. That's why in *Shrimadbhagwadgita*, a *shastra* that describes ethics in real word, Shri Krishna says- '*Vedanaam Saamavedosmi'*. Without undermining other Vedas, it acknowledges importance of *Samveda* while practicing ethics in real life. We'll examine in detail, what ethical progress was achieved using this, how it transformed in history and in today's globalised world, what importance it possesses. We'll see how practicing Samvedic poetics can help us address some of the major ethical problems of modern society.

102

वैदिक शिक्षणाभ्यास प्रक्रिया में स्वाध्याय की प्रासंगिकता

डॉ. सपना तिवारी

पूर्व शोध–छात्रा, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

मनोव्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन लाने हेतु जिन विशेष परिस्थितियों का विद्यालय–प्रांगण और कक्षा–कक्ष में निर्माण किया जाता है, उनका उद्देश्य अध्येता की स्मृति शक्ति को विकसित करते हुए बौद्धिक व्यवहारों में परिवर्तन द्वारा उसके मौलिक, काल्पनिक और समीक्षात्मक चिन्तन स्तर को विकसित करना है। विकास की इस श्रृंखला को शिक्षाविद्ों के स्मृति–स्तर, बोध–स्तर और चिन्तन–स्तर के रूप में तीन भागों में विभक्त किया है। ब्रह्मसूत्र के इस वचन द्वारा शिक्षा के तीन स्तरों की पुष्टि हुयी है, जिसमें कहा गया है कि प्राणीमात्र को श्रुति वचनों से आत्म–तत्त्व के विषय में मनोयोग पूर्वक श्रवण करना चाहिए। दर्शनशास्त्रों के अनुसार युक्तिपूर्वक चिन्तन करना चाहिए तथा चिन्तन द्वारा समुपलब्ध आत्म–स्वरूप विषयक समाधि–ज्ञान द्वारा आत्म–तत्व का साक्षात्कार करना चाहिए। यही ज्ञान की परम सीमा है। जिसके लिए शास्त्रज्ञों ने स्वाध्याय और प्रवचन का उपदेश दिया है। आत्मोन्नति और ब्रह्मत्व की प्राप्ति का मार्ग ज्ञान चक्षुओं के अभाव में नहीं किया जा सकता।

ज्ञान की खोज के लिए ऋषियों ने स्वाध्याय और प्रवचन के उपक्रम का विधान किया है। स्वाध्याय और प्रवचन के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करते हुए तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि 'प्रत्येक व्यक्ति को सर्वथा सदाचार का ही पालन करना चाहिए और तत्सम्बन्धी शास्त्रों का अनुशीलन करना चाहिए तथा साथ ही शिष्यों और अनुयायियों को प्रवचन द्वारा सदुपदेश करना चाहिए। मनसा–वाचा–कर्मणा सर्वथा सत्य का ही आचरण करना चाहिए। शिक्षा के औपचारिक–अनौपचारिक पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षणाभ्यास की स्वाध्याय और प्रवचन प्रणाली द्वारा मानव शिशु में निर्हित कलुषित प्रवृत्तियों का परिशोधन कर उसे इस योग्य बनाया जाता है, जिससे वह स्वयं का अभ्युदय प्राप्त करता हुआ जनकल्याण की भावना से अपनी अहम् भूमिका निभा सके। अतः स्वाध्याय और प्रवचन वास्तविक रूप में नैसर्गिकता के प्रकटीकरण की प्रक्रिया है, जिसे शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य माना गया है।

103

समसामयिक समस्या : 'नैतिक मूल्यों का ह्रास' तथा वैदिक समाधान

डॉ. सरोज कुमार शुक्ल

अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत तथा प्राकृतभाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

सम्प्रति समाज में अनेक समस्यायें राष्ट्र के उत्थान एवं विकास में बाधा के रूप में जानी जाती हैं, जिसमें मानव मूल्यों या नैतिक मूल्यों के ह्रास सम्बन्धी समस्या समकालीन समाज में व्याप्त है। पाश्चात्य सभ्यता के कारण मानव जीवन में परस्पर वैमनस्य में वृद्धि हो रही है। मानव में अन्तर्निहित दया, करुणा, प्रेम, सौहार्द, त्याग, तप, सत्य तथा परोपकार यह सभी प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं, साथ ही मानव अपनी स्वार्थ–सिद्धि हेतु असत्य तथा दुराचरणों का सहारा ले रहा है। चारित्रिक पतन की इस भयावह स्थिति से मुक्ति के लिए अनेकानेक प्रयास किये गये हैं। नैतिक मूल्यों की रक्षा करना स्वयं व्यक्ति का उत्तरदायित्व है। इस समस्या के समाधान हेतु वैचारिक पृष्ठभूमि को निर्मित करने की आवश्यकता है।

वैदिक वाङ्मय में निहित सूक्तों में नैतिक मूल्य वर्णित है। मानव में बहुशः स्वाभाविक गुण विद्यमान हैं। वेदों में पदे–पदे शुभकर्मों के करने सम्बन्धी उपदेश प्राप्त होते हैं। दम, दया, जप, तप, यम–नियम आदि व्यक्ति को चरित्रवान बनाते हैं। वेदों में प्रतिपादित है कि सत्कर्म जीवन के आधार स्तम्भ हैं। मानव द्वारा कार्यों को सुविचार, सुदृष्टि, सुश्रुति तथा सुभाषण के साथ सम्पन्न करना चाहिए– *'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'*(यजुर्वेद काण्व संहिता 40.2)। धार्मिक उपदेशों के आधार पर समाज में धर्म के प्रति मानव मात्र में आस्था जाग्रत होगी तथा समाज नैतिक मूल्यों के ह्रास की समस्या का समाधान करने में समर्थ हो सकेगा। सम्पूर्ण कार्य मन से ही सम्पादित होते हैं। इसलिए

मन को संकल्प युक्त होने की प्रार्थना की गई है। वैदिककालीन समाज अनुशासन, समानता, मर्यादा, सामाजिक आदर्श आदि मानदण्डों पर आधारित था। वैदिक ऋषि असत्य से सत्य की ओर जाने की प्रार्थना करते हैं– *'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि'* (यजुर्वेद काण्व संहिता–1.5)। धर्म की सम्प्रभुता तथा आचरण की पवित्रता भारतवासियों के लिए सर्वस्वभूत रही है–तत्सम्बन्धी उपदेश हमारे वैदिक वाङ्मय में समाहित है, जिसके अध्ययन से आधुनिक समाज में व्याप्त नैतिक मूल्यों के ह्रास की समस्या का समाधान किया जा सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि वैदिक साहित्य में सन्निहित उदात्त मानव मूल्यों का प्रचार–प्रसार किया जाय, जिससे एक सुदृढ़ एवं सुसंस्कृत समाज की स्थापना की जा सके।

104

व्यक्तित्त्व–विकास में वैदिक शिक्षा की प्रासंगिकता

श्री सत्यकेतु

प्रवक्ता, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

व्यक्ति एवं समाज में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । व्यक्ति की प्रत्येक उपलब्धि की सार्थकता समाजहित के निमित्त उसके सदुपयोग पर निर्भर करती है। अतएव व्यक्ति के सार्थक व्यक्तित्व के निर्माण की महती आवश्यकता है जिससे एक स्वस्थ समाज का जन्म हो सके। चूंकि सभी शिक्षाओं एवं कलाओं का आदि स्रोत वेद है, अतः व्यक्तित्त्व–विकास के गुणसूत्र भी भगवती श्रुति में उपनिबद्ध हैं। वैदिक शिक्षाओं का उद्देश्य एकांगी व्यक्तित्त्व का निर्माण नहीं अपितु एक बहुमुखी समन्वयकारी सहिष्णु व्यक्तित्त्व का निर्माण करना है।

वर्तमान शिक्षा–पद्धति से मनुष्य के भौतिकवादी ज्ञान में अतिशय वृद्धि हुई है। वह आज ग्रहों व उपग्रहों पर जाने को मचल रहा है। वह अपनी इसी उन्नति को अपना सर्वस्व मान रहा है, किन्तु उसके व्यक्तित्त्व का यह विकास एकांगी है अभी उसका आध्यात्मिक विकास होना शेष है जिसके अभाव में उसके पथभ्रष्ट होने की सम्भावना है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में केवल भौतिकता अथवा केवल आध्यात्मिकता को अनर्थकारी बताते हुए दोनों की समन्वयात्मक उन्नति पर बल दिया है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व–निर्माण में माता–पिता एवं आचार्य का योगदान होता है। इनमें से आचार्य का महत्त्व सर्वाधिक है। वैदिक शिक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों के गुणों और कर्त्तव्यों से सम्बन्धित सामग्री विद्यमान् है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों शिक्षक को अदृप्त (दर्प अथवा अभिमान से रहित), विजानन् (विविध विषयों को जानने वाला) स्वादमा (पाठ्य विषय को रुचिकर बनाने वाला) आदि विशेषणों से विशेषित किया है। अथर्ववेद का ब्रह्मचर्य सूक्त पूर्ण रूपेण आचार्य व शिष्य के कर्त्तव्यों एवं गुणों के वर्णन को समर्पित है। सच्चरित्रता, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता, धीरता, अदीर्घसूत्रता, सत्यवक्तृता, निर्व्यसनता, दयालुता, स्वाभिमानिता, स्वावलम्बनता तथा क्रियाशीलता आदि सार्थक व्यक्तित्त्व के अगंभूत गुणों का विकास करना ही वैदिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है, जिसके अभाव में मनुर्भव का उद्घोष पूर्ण नहीं हो सकता है।

105

उपनिषदों में वर्णित नैतिक शिक्षा की उपादेयता : वर्तमान शिक्षा–प्रणाली के विशेष संदर्भ में

कु. सावित्री

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानव अपने ज्ञान और बुद्धि के कारण सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है (मनस्मृति 7.8), जो उसमें सुप्त शक्तियों का जागरण करती है। मनुष्य की इन अंतर्निहित शक्तियों का जागरण ही नैतिक शिक्षा का आधार है क्योंकि नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा ही श्रम, तप और साधना मानव का कल्याण कर सकती है– *'न ऋत श्रान्तस्य सख्याय देवाः'* (ऋग्वेद 4.33.11)। औपनिषदक शिक्षण–पद्धति में स्वाध्याय, मनन, चिंतन तथा मौखिक वाचन की प्रधानता थी। प्राचीन

काल में शिक्षा उपनयन संस्कार से प्रारम्भ होती थी तथा भिन्न–भिन्न वर्णों के छात्रों के लिए उसकी समय–सीमा निर्धारित थी। तात्कालीन शिक्षा उदात्त मानवीय भावनाओं तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित होने के कारण ही भारत विश्व का सिरमौर बना और जगतगुरु कहलाया। वैदिक शिक्षा का उद्देश्य मात्र ज्ञानार्जन ही नहीं था अपितु नैतिक मूल्यों–आत्मानुशासन, सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यों व्यक्तित्त्व निर्माण एवं अधिकारों की शिक्षा प्राप्त करना भी था। जिसके कारण बालक का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास होता था। छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के जिन तीन स्कन्धों का विधान किया है– यज्ञ, तप तथा श्रम के द्वारा स्पष्ट है कि शिक्षा में प्रकृति, परिवेश और नैतिक मूल्यों का जो सामञ्जस्य है, वही मानव को धर्म की शिक्षा दे सकता है। अतरू उपनिषदों की शिक्षा को वर्ग, जाति, समाज या काल में नहीं रोका जा सकता, वह सम्पूर्ण मानवता को आत्मज्ञान का सन्देश देता है जिसकी इस भौतिकवादी युग में आवश्यकता है।

वर्तमान शिक्षा–प्रणाली पूर्णतरू संस्कार रहित नियम रहित हो गयी है। आज शिक्षा केवल अर्थोपार्जन से अधिक महत्त्व नहीं रखती। यह अत्यंत खेद का विषय है कि जिस उपनिषद् वाङमय में सार्वभौम ज्ञान निहित है। उसकी आज की शिक्षा–प्रणाली में घोर उपेक्षा हो रही है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के प्रति निराशावादी और असंतुष्ट है। प्रस्तुत शोध–पत्र में उपनिषद कालीन शिक्षा के नैतिक मूल्यों के स्वरूप तथा महत्त्व को प्रस्तुत करते हुए, वर्तमान शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में उनकी उपयोगिता को बताया जाएगा।

106

वैदिक शिक्षा की आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उपयोगिता एवं सन्दर्भ

डॉ. शालिनी वर्मा

पूर्व शोधछात्रा, दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट, दयाल बाग, आगरा (उ.प्र.)

भारतीय शिक्षा का बीजारोपण आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हुआ था, किन्तु उसके सुसम्बद्ध स्वरूप के दर्शन वैदिक काल के आरम्भ में होते हैं। प्राचीन भारत के मनीषी इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे कि शिक्षा समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सम्यता की बहुर्मुखी प्रगति की आधारशिला है। उन्होंने शिक्षा की ऐसी प्रशंसनीय प्रणाली का प्रतिपादन किया, जिसने न केवल विशाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा वरन् ज्ञान के विविध क्षेत्रों में मौलिकता को भी जन्म दिया। वैदिक साहित्य में 'शिक्षा' शब्द का अर्थ ज्ञान, विद्या, विनय आदि है। शिक्षा को वह प्रकाश माना गया, जो व्यक्ति के बहुअंगी विकास करने, उत्तम जीवन व्यतीत करने और मोक्ष प्राप्ति में सहायक थी। अन्य शब्दो में शिक्षा को जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में व्यक्ति को पथ प्रदर्शित करने वाला प्रकाश का स्त्रोत, अन्तदृष्टि, अर्न्तज्योति, ज्ञानचषु और मनुष्य का तीसरा नेत्र माना गया है। प्राचीन भारत में जिस शिक्षा प्रणाली का संगठन किया गया, वह अनेक शताब्दियों तक अति अल्प परिवर्तनों के साथ सहचर रूप में चलती रही। वैदिक साहित्य में नैतिकता पर बल दिया गया है। नैतिक आदर्श ही मानवता के निर्माण में सहायक होते थे। वैदिक काल में शिक्षा का स्वरूप जटिल और प्रक्रिया सतत् थी, उसका उद्देश्य चरित्र और नैतिक गुणों का व्यक्ति में निर्माण करना था। कर्मकाण्ड व अनुष्ठानों द्वारा सीखने का प्रतिदिन अवसर मनुष्य को मिलता था।

वैदिक शिक्षा और आधुनिक शिक्षा के मध्य अनेक शताब्दियों का अन्तर है, फिर भी वैदिक शिक्षा के अनेक सिद्धान्तों और व्यवहारों को आधुनिक शिक्षा में स्थान दिया जा सकता है। आज हम आधुनिक युग में निवास कर रहे हैं किन्तु हम आज भी धर्म, ईश्वर और निष्काम धर्म को महत्त्व देते हैं। आज जबकि सम्पूर्ण विश्व धन–शक्ति, हिंसा और कूटनीति में आस्था रखता है, हम प्रेम, सत्य, अहिंसा, त्याग और तपस्या के समक्ष श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं। हम आज भी उस आदर्शवादिता को नहीं भूले हैं, जिसका वैदिक शिक्षा द्वारा मनुष्य के मन मस्तिष्क में समावेश किया जाता था। इसी प्रकार मानव सम्बन्धों को घनिष्ठता प्रदान करने के लिये पारस्परिक स्नेह और सम्मान की भावनाएँ, आज भी जीवन्त है। तर्कसंगत रूप से वैदिक शिक्षा के विशिष्ट गुणों को अध्ययन करके उन सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा–पद्धति में सम्मिलित किया जा सकता है, जो मौलिक शिक्षा प्रणाली का आधार स्तम्भ है। सभी शिक्षाविद्ों एवं सरकारी तंत्र को सम्पूर्ण भारतवर्ष में समान पाठ्यक्रम शिक्षा प्रणाली को लागू करना चाहिए, जिससे स्वस्थ वातावरण तैयार हो सकें ।

107

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. शेषमणि शुक्ल

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ (उ.प्र.)

वेद का वेदत्व इसी बात से है कि वेद पूर्ण ज्ञान के प्रकाशक हैं। मनुष्य के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए आवश्यक ज्ञान की विपुल सामग्री अपने अन्दर समेटे हुए अनादिकाल से अपने उत्तम ज्ञान का डिंडिम घोष करने वाले ग्रन्थ वेद ही हैं। मनुष्य के लिए शिक्षा और नैतिकता दोनों उत्तम आभूषणों की तरह है। शास्त्र के अनुकूल कायिक, वाचिक एवं मानसिक क्रिया–कलाप ही चरित्र के द्योतक हैं। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। उन्नतशील राष्ट्र के लिए चरित्रशील व्यक्तियों का होना परमावश्यक है। मनुष्य का चरित्र पूर्णरूप से निष्कलंक तभी होता है, जब उसके अन्तःकरण में रहने वाले दोष नष्ट हो जाते हैं। इन दोषों को दूर करने के असंख्य उपाय वेदों, स्मृतियों और पुराणों में भरे पड़े हैं। मनुष्य जब सत्य और ज्ञान की खोज में होता है तब उस विवेकशील पुरुष के सामने सत्य और असत्य दोनों उपस्थित होते हैं। उनमें से जो सत्य है उसकी परमेश्वर रक्षा करते हैं और असत्य का नाश कर देते हैं– *'सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत् सत्यं यतरद्ऋजीयस्तदित् सोमो अवति हन्त्यासत्।।'* (ऋग्वेद 7.104.12, अथर्ववेद 8.4.12)। वेद में बताये गये शिक्षा और चरित्र निर्माण के उपाय सर्वथा प्रासंगिक बने रहेंगे। इनकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकेगी।

108

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तनः आधुनिक सन्दर्भ

श्रीमती शीला यादव

शोध–छात्रा, साहित्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ (उ.प्र.)

आधुनिक युग में शिक्षा और नैतिकता के सन्दर्भ में वैदिक काल के कठोर नियमों एवं दिव्य गुणों को लाने की आवश्यकता है। आज के युग में शिक्षा में नैतिकता का पतन हो रहा है। इसलिए सत्य, अहिंसा, न्यायप्रिय जैसे वैदिक काल के उच्चकोटि के गुणों को लाने का प्रयास करना होगा। शिक्षा में नैतिकता होनी चाहिए, तभी विश्व में शान्ति स्थापित होगी। प्रस्तुत शोधलेख में इन्हीं तथ्यों की ओर इंगित किया जायेगा।

109

शिक्षा एवं नैतिकता पर वैदिक चिन्तनः आधुनिक सन्दर्भ

श्री शिवकुमार

शोध–छात्र, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विद्या वह है जो हमें सब प्रकार के दुःखों से विमुक्ति दिलाये। वेदानुकूल शिक्षा एवं नैतिकता का उद्देश्य मनुष्य को केवल त्यागवादी ही बनाना नहीं है, अपितु शारीरिक, अत्मिक एवं सामाजिक उन्नति करना ही मुख्य ध्येय है। इसीलिए अथर्ववेद का प्रारम्भ वैदिक शिक्षा के उद्देश्य के साथ प्रारम्भ होता है– *'पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसां सह।* ब्रह्मचारी विद्या के तेज को अपने ऊपर आच्छादित करता हुआ, तप से समाज में उठ खड़ा होता है। वास्तव में तप या श्रम नैतिकता का मूलाधार है। अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि वेदानुसार शिक्षा के द्वारा जिस नैतिकता का आदर्श लक्षित है, उसके मूल में तप प्रमुख है – *'ऋतं तपः, सत्यं तपः, शांतं तपः, दमस्तपः'* (तैत्तिरीय आरण्यक 108)। तप केवल परिश्रम, शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट ही नहीं है, तप उससे बढ़कर निष्ठा, दृढ़ता, संकल्प है। इन सद्गुणों को जगाना शिक्षा व नैतिकता का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार शिक्षा से प्राप्त नैतिकता राष्ट्रोन्नति का प्रमुख आधार है, यही उदात्त भारतीय संस्कृति का मूलाधार है।

वेद भारतीय संस्कृति की शाश्वत निधि हैं और मानव–जाति के लिए सार्वभौम तथा सार्वकालिक सन्देशों के वाहक हैं। वैदिक शिक्षा पद्धति में मानवीय और नैतिकता का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, इसलिए उसके घटक नैतिक मूल्यों में से दो पर विचार करना अभीष्ट है– ब्रह्मचर्य एवं मानवीयता की भावना। कहा गया है कि देव ब्रह्मचर्य तथा तप के बल पर मृत्यु को परास्त कर अमर हो गये (अथर्व 11.5.19)। वस्तुतः प्राचीन भारतीय शिक्षा के मूल में ब्रह्मचर्य का अभ्यास प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अपरिहार्य था। साथ ही वेद में व्यक्ति को समाज के योग्य बनाना ही शिक्षा एवं नैतिकता का केन्द्र माना गया था। आज की उपयोगितावादी शिक्षा को जीवन के समग्र विकास की दृष्टि से रचनात्मक मोड़ देने की आवश्यकता है, उसमें जीवन मूल्यों की शिक्षा, मानवीय सम्बन्धों की शिक्षा, भावात्मक सन्तुलन की शिक्षा तथा सर्वोपरि सिद्धान्त और व्यवहार के समन्वय की शिक्षा भी समाविष्ट की जानी चाहिए। जिससे शिक्षा एवं नैतिकता के प्रति जागृति का समावेश होने से अन्तःप्रकृति एवं बाह्यप्रकृति के सन्तुलन में सहायता मिल सके तथा समाज में सच्चे सर्वाङ्गीण रूप से विकसित आध्यात्मिक आदर्शों से अनुप्राणित मनुष्यों के निर्माण की प्रक्रिया पुनः प्रारम्भ हो सके, जो कि वैदिक चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है।

110

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

कु. सीता देवी

शोध–छात्रा, साहित्य विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ

वर्तमान शिक्षा में नैतिक तत्त्वों का ह्रास हो रहा है। अतः समाज में नैतिकता का संकट उपस्थित है। नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था खत्म होने लगी है। लालच, परिग्रह, घृणा, हिंसा, क्रूरता, जनविनाश, हिनता एवं असंतोष का प्रदूषण चारों ओर फैल रहा हैं। इन परिस्थितियों में शिक्षा में नैतिक तत्त्वों का समावेश करना अति आवश्यक है। वर्तमान समय में व्यक्ति केवल राष्ट्र व समाज तक सीमित नहीं रह सकता, उसे इससे बढ़कर विश्व स्तर तक सोचना होगा। *'सर्वे भवन्तु सुखिनः'* की उक्ति अपनानी पड़ेगी। संसार का सुख देखना ही वैदिक सभ्यता थी। लेकिन आज मानव इसे पिछे छोड़कर स्वार्थ भाव अपनाने लगा है।

111

वैदिक शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. शुचि शुक्ला

प्रवक्ता, संस्कृत, लाला महादेव प्रसाद वर्मा बालिका स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

वैदिक शिक्षा दर्शन का आधार वेद है। वेद का अर्थ ज्ञान है और दर्शन का अर्थ जो देखा जाय। अतः ज्ञान के द्वारा जो देखा जाय वही वैदिक दर्शन है, इसलिए वैदिक शिक्षा दर्शन एक विशेष प्रकार की ज्ञानात्मक चिन्तनधारा है, जो जीवन के लक्ष्यों, आदर्शो एवं सत्कर्मों को प्राप्त कराती हुई शिक्षा को पूर्ण करती थी। वैदिक शिक्षा में शिष्य ब्रहमचर्य आश्रम में वेदाध्ययन करता था, ग्रहस्थ आश्रम में कर्तव्य पालन, वानप्रस्थ में ऋषियों और ज्ञानियों का सत्संग और सन्यास आश्रम में आत्मानुभूति एवं मोक्ष प्राप्त करता था। वेदों में मानवता के कर्तव्यों और अनुशासन का गम्भीरता से निरूपण है, जिसके अन्तर्गत छात्र और अध्यापक दोनों ही आध्यात्मिक अनुशासन का पालन करते हुये आदर्श जीवन के त्याग, तपस्या, ज्ञान, कर्म और व्यवहार को प्रकट करते थे– *'ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतस्तु। मा विद्विषावहै'* (तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1)। वैदिक शिक्षा दर्शन में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। विद्यार्थी अध्यापक से *'तमसो मा ज्योतिर्गमय'* कहता था और अध्यापक ज्ञान का प्रकाश प्रकट कर देता था और समावर्तन के समय अध्यापक विद्यार्थी को अनुशासनहीनता न करने का आदेश देता था *'मा प्रमदितव्यम्'* और विद्यार्थी भी उसे *'चैतदुपास्यमि'* कहकर स्वीकार करता था। यह था वैदिक शिक्षा के शिक्षार्थी एवं शिक्षक का महान आदर्श जिसकी आज अपेक्षा होनी चाहिए।

वर्तमान समय में यदि हमें विश्व बन्धुत्व एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की स्थापना नवभारत में करनी है, तो नवीन पीढ़ी में वैदिक युग के समान ही नैतिकता का सृजन करना होगा। प्रस्तुत शोध–पत्र में वैदिककालीन शिक्षा में प्रतिपादित आदर्शों का वर्तमान समय में हो रहे पतन पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है।

112

कठोपनिषद् में वर्णित नैतिकता : आधुनिक सन्दर्भ में

डॉ. सुधा शुक्ला

लखनऊ, उ.प्र

शुक्रनीति के अनुसार सम्पूर्ण लोक–व्यवहार की स्थिति का आधार 'नीति' है– *'सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्या विना नहि'* (शुक्रनीति 1.11)। यह नीति ही सम्पूर्ण लोकव्यवहार की परिचायक है। मनु द्वारा बताये गये धर्म के चार लक्षणों में 'वेद' प्रथम है– *'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विध प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्'* (मनुस्मृति 2.11)। इसीलिए वेद को नीति–ज्ञान का चरम प्रमाण माना जाता है। वेद स्पष्ट रूप से नीतिशास्त्रविषयक ग्रन्थ नहीं है। इनमें न विशेष रूप से नीति की व्याख्या की गयी है और न ही नैतिक सिद्धान्तों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है; परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि तत्कालीन आर्यों के नीति सम्बन्धी विचारों और उनके द्वारा निर्धारित नैतिक आदर्शों को जानने का मूलाधार एकमात्र ये ग्रन्थ ही हैं। यह नैतिकता ही हमारे चरित्र को सुदृढ़ करती है। इस सुदृढ़ता से आत्मबल की प्राप्ति होती है और आत्मबल के लिए नैतिकता का परिपालन अत्यन्त आवश्यक है।

कठोपनिषद् में हमें नैतिकता का उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टिगत होता है। यद्यपि यह सही है कि कठोपनिषद् का मुख्य विषय अध्यात्म है, परन्तु इसके साथ ही साथ इसमें नैतिक शिक्षा का उपदेश भी है। इस सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो ही बातें देखने को मिलती है– पुत्र का कर्त्तव्य एवं अतिथि सत्कार का महत्व। कठोपनिषद् के प्रारम्भ में ही पुत्र का कर्त्तव्य दर्शाया गया है कि पुत्र को आज्ञाकारी होना चाहिए। उसे अपने पिता की प्रसन्नता, शान्ति तथा सुख का ध्यान रखना चाहिए। इसीलिए वह प्रथम वर में अपने पिता के शान्त और प्रसन्नचित्त होने की बात कहता है। यह नैतिक शिक्षा वर्तमान सन्दर्भ में भी उतनी महत्वपूर्ण और आवश्यक है क्योंकि पश्चिमी सभ्यता का महती प्रभाव युवा पीढ़ी और बच्चों पर होने के बाद भी हमारे देश की युवा पीढ़ी और बच्चों में माता–पिता के लिए आदरभाव तथा उनकी सुख और प्रसन्नता का भाव अभी भी उनके मन में शेष है। इसी का ही परिणाम है कि हमारे देश में वृद्ध–आश्रमों की संख्या न के बराबर है परन्तु इस संख्या की भविष्य में बढ़ोत्तरी न हो इसके लिए हमारे वैदिक नैतिकता के चिन्तन और विचारों को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर ही प्रचार और प्रसार की आवश्यकता है।

113

वैदिक सहित्य में गुरु का स्वरूप एवं कर्त्तव्य

कु. सुमन आर्य

हिरण कुदना, दिल्ली

'गु शब्दस्त्वन्धकारे स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधके। अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते'। अपने ज्ञान के आलोक से शिष्य के अज्ञान को नष्ट करने के कारण शिक्षक को 'गुरु' संज्ञा से अभिहीत किया गया है। मनुष्य के तीन ऋणों में एक गुरु–ऋण भी माना गया है। इस ऋण से मनुष्य तभी उऋण हो सकता है जब वह गुरु के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करे। 'गुरु' शब्द के समानार्थक 'आचार्य' शब्द को परिभाषित करते हुए यास्क मुनि कहते हैं– *'आचार्य आचारं ग्राहयति'*, *'आचिनोति अर्थान्'*, *'आचिनोति बुद्धिम् वा'*। वास्तव में आचार्य अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सभी शास्त्रों का गहन अध्ययन करके शिष्यों को सभी प्रकार का शास्त्रीय एवं धर्म सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण कराता है। शास्त्रों का अध्ययन करते हुए विशिष्ट दिशा–निर्देश हेतु विद्यार्थी को गुरु की आवश्यकता होती है।

वैदिक युग का आचार्य वात्सल्य पूर्वक शिष्य को ज्ञान तथा संस्कारों से सम्पन्न बनाकर समाज का उपयोगी एवं सम्मानित सदस्य बनाता था। मनु ने तो बार–बार आचार्य को पिता कहा है। प्रस्तुत शोध–पत्र में वैदिक कालीन आचार्य के स्वरूप का वर्णन करते हुए आधुनिक शिक्षा–प्रणाली में उसकी सार्थकता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाएगा।

114

शिक्षा और नैतिकता पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ

कु. वन्दना द्विवेदी

शोध–छात्रा, साहित्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ (उ.प्र.)

शिक्षा मानव विकास का कारण है। शिक्षा से हमारा तात्पर्य बालक के सर्वांगीण विकास से है। वर्तमान समय में शिक्षा में नैतिक मूल्यों के गिरावट के प्रति सभी ओर चिन्ता व्यक्त की जा रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वैदिक परम्परा में शिक्षा का जो स्वस्थ एवं उद्देश्य था, वस्तुतः वह आज परिवर्तित हो गया है। जिससे मानव समाज अनेक समस्याओं से ग्रस्त होता जा रहा है। अतः वर्तमान में आवश्यक है कि वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य एवं स्वरूप का समावेश आधुनिक शिक्षा में किया जाये, जिससे मानव वैज्ञानिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक एवं सामाजिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके एवं सम्पूर्ण विश्व में *'सर्वे भवन्तु सुखिनः'* इस वैदिक वाक्य के अनुसार सुख एवं शान्ति की स्थापना हो सके।

115

वैदिक कालीन नैतिक शिक्षा एवं नारी सशक्तीकरण

कु. वन्दना गुप्ता

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, लखनऊ विश्वद्यिालय, लखनऊ (उ.प्र.)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। उनकी अवस्था पुरुषों के सदृश थी। वे अपना मनोनुकूल आत्मविकास और उत्थान कर सकती थीं। उन्हें विवाह, शिक्षा, सम्पत्ति आादि में अधिकार प्राप्त थे। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू और माँ के रूप में किये जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है। भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्व–शक्ति–सम्पन्ना मानी गई तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गई। वेदों में नारी को सदा जागरूक रहने की शिक्षा दी गई है। वेदों के अनुसार जागरूक और अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत् नारी ही सुखी जीवन व्यतीत करती है और दीर्घायु प्राप्त करती है।

ऋग्वेद के अनुसार नारी के लिए आवश्यक है कि वह ओजस्विनी हो। उसमे अपने चरित्र की रक्षा की सामर्थ्य हो। वह समाज में अधिकार स्थापित कर सके, उसका सौभाग्य सूर्य के तुल्य प्रतिदिन बढ़े। वह तेजस्वी और वीर पुत्रों को जन्म दे, जो राष्ट्र की सुरक्षा में समर्थ हों। वेद शास्त्र में नारी को अजेय और शत्रु–विजयिनी बताया गया है। नारी को 'सहस्रवीर्या' शब्द द्वारा सहस्रों प्रकार की सामर्थ्य से युक्त कहा है। एक मंत्र में स्त्री–सेना को युद्ध में भेजने का वर्णन है। नारी को ब्रह्मा कहा गया– *'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ'*, जिसका अभिप्राय है कि वह स्वयं विदुषी होते हुए सन्तान को सुशिक्षित बनाती है। बह्मा ज्ञान का अधिष्ठाता है। वही यज्ञों का संचालन करता है। वह ज्ञान–विज्ञान में श्रेष्ठ होता है। अतः उसे यज्ञ में सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। उषा देवी का वर्णन एक युवती के रूप में करते हुए कहा गया है कि वह किसी प्रकार का संकोच न करते हुए आगे–आगे चलती है। अंधकार को दूर करती है और प्रकाश फैलाती है। इससे ज्ञात होता है कि निर्भीक और साहसी युवती समाज का नेतृत्व करती है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि स्त्री अबला नहीं सबला है। इन्द्राणी का कथन है कि 'जो दुष्ट मुझे अबला समझकर सताना चाहता है, उसका मैं नाश करूँगी'। शोध–पत्र में उपर्युक्त प्रसंग का विवेचनात्मक अध्ययन कर नारी आदर्श की प्राचीनता को उद्धृत करते हुए वर्तमान सामाजिक मान्यताओं से तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत किया जायेगा।

116

वेद–प्रतिपादित आचार तथा वर्तमान युग

कु. वेद कुमारी

शोध–छात्रा, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आज संसार ऐसे सदाचार की खोज में है, जिससे उसे शान्ति मिल सके। वस्तुतः वैदिक आचार ही एकमात्र ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा हम सब सुखी, सम्पन्न और कल्याणकारी मार्ग पर बढ़ सकते हैं। वेद में मानवमात्र को मनुर्भव का पाठ पढ़ाया है। वैदिक आचार में ब्रह्मचर्य–पालन, निर्भयता, तपश्चरण द्वारा विद्या–प्राप्ति, जीवन के अन्दर श्रेश्ठत्व का आधान करना, अविद्या–नाश, परिश्रम–युक्त जीवन, प्रशंसित धनार्जन, उत्कृष्ट बुद्धि–वैभव की याचना, यशस्वी जीवन–यापन का समावेश है। वैदिक सदाचार में *'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे'* अर्थात् हम एक–दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखते हैं, *'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'* सबके प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार हो, *'मा नो द्विक्षत कश्चन'* आदि के माध्यम से मैत्री पर बल दिया गया है। इत्यादि के रूप में पुरुषार्थयुक्त आचरण करने की शिक्षा दी गयी है। वैदिक आचार में मन–वचन–कर्म से संगठित होकर रहने का उपदेश दिया गया है। *'यद् भद्रं तन्न आसुव', 'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा'* के रूप में एक उत्कृष्ट जीवन जीने की कामना की गयी है। वर्तमान युग यन्त्रप्रधान युग है। अधिक सुख प्राप्त करने की लालसा से भौतिक सुख को ही जीवन का आधार मानते हैं। अपनी भौतिक उन्नति में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक सामर्थ्य को प्रधानता न देकर केवल स्पर्धा में लगे रहते हैं। आधुनिक संसाधनों का उपयोग करने से मनुष्य परिश्रम–शून्य हो जाता है, जिसके कारण अनेक शारीरिक रोग हो जाते हैं। वर्तमान युग की अनेक समस्याएँ यथा– पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से किशोरावस्था में संगदोष होना, मद्यपान करना, धन को ही परम सम्पत्ति मानना, त्याग की भावना न होना, मानव–जीवन में इन्द्रिय–निग्रह का न होना, अकर्मा होना आदि हैं, जिनका समाधान वैदिक आचार के माध्यम से ही सम्भव है। वैदिक आचार प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण को शुद्ध करता है।

117

वैदिक चिन्तन में मानव–प्रगति का मूल आधार शिक्षा

डॉ. विभा शुक्ला

पूर्व शोध–छात्रा, उन्नाव (उ.प्र.)

देश की प्रगति का मूल आधार शिक्षा, नैतिकता, धर्म संस्कार, अनुशासन है। जिस देश की शिक्षा सर्वोत्कृष्ट होगी वह देश ऊँचाईयों पर पहुंचेगा। शिक्षा का आरम्भ साक्षरता से होता है। हमारे भारतीय मनीषी मनुष्य का वास्तविक विकास पंचकोशो–अन्नमय, प्रमाणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय के विकास पर निर्भर मानते हैं। उनका कथन है कि इन पंचकोशो के विकास के द्वारा पूर्ण विकास को प्राप्त व्यक्ति ही समाज और राष्ट्र को प्रगति के पथ पर अग्रसर करा सकते हैं। प्राचीन ऋषियों व आचार्यों का कथन है कि शिक्षा का प्रमुख ध्येय मानव को विमुक्ति का अधिकारी बनाना है। वास्तविक शिक्षा वही है, जो मुक्ति प्रदान करें– *'सा विद्या या विमुक्तये'*। शिक्षा मनुष्य जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है। जीवन का प्रत्येक अनुभव शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। जो कुछ भी व्यवहार मनुष्य के ज्ञान की परिधि को विस्तृत करे, उसकी अन्तर्दृष्टि को गहरा करें, उसकी प्रतिक्रियाओं का परिष्कार करें, भावनाओं एवं क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करें। वह शिक्षा है। शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है, उतना ही समाज से है। मानव जीवन में जो कुछ भी अर्जित है, वह शिक्षा का परिणाम है। समाज का प्रवाह शिक्षा के कारण गतिशील होकर विकास की ओर अग्रसर होता है। वेदों के अनुसार यह ऋषि–ऋण कहा गया है, जिससे उऋण होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। वर्तमान पीढ़ी से यह अपेक्षा है कि प्राप्त पूंजी में अपने प्रयत्न और अनुभव के आधार पर वृद्धि करें। वैदिक–साहित्य में धर्म, नैतिक मूल्यों का शिक्षा से अटूट सम्बन्ध है। समाज के सुख–दुःखों के साथ समरस होना, राष्ट्रप्रेम का परिचायक है। इस अनुभूति का विकास छात्रों में नैतिक शिक्षा द्वारा ही होता है।

118

शिक्षा और नैतिकता : पाणिनीय संदर्भ में

श्री विकास शर्मा

शोध–छात्र, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद अनन्त ज्ञान एवं विज्ञान के अक्षय कोष हैं। इनमें विश्वजनीन संस्कृति एवं सभ्यता का इतिहास भी समाहित है। वेद के गूढ़ार्थ को समझने के लिए उसके छः अङ्गों सहित ब्राह्मण, उपनिषद्, प्रातिशाख्य, स्मृतिग्रन्थ एवं पुराणों का गम्भीर एवं विशद अध्ययन नितांत आवश्यक है। इस प्रकार ज्ञानार्जन के पश्चात् ही वेदप्रतिपादित विषयों को समझने की विशुद्ध दृष्टि प्राप्त होती है। वेद की षड्ङ्गता के प्रतिपादन का मौलिक उद्देश्य वेदार्थ ज्ञान ही है। पाणिनि के अनुसार शिक्षा वेद की घ्राणेन्द्रिय (नासिका) है– *'शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य'* (पाणिनीय शिक्षा 42)। पाणिनि के अनुसार शिक्षा एक प्रकार का वर्णयोग है। वर्णज्ञान, वाणी का विषय है। वाणी का उच्चारण करके ही आचार्य परम्परा, अनादिकाल से अकारादि वर्णों का उपदेश करते आये हैं। वर्ण ज्ञान के द्वारा ही वर्णराशि शब्दब्रह्म का बोधक होता है। वर्णों का शुद्ध उच्चारण, शुद्ध प्रयोग करना ही नैतिकता है। वेद मन्त्र का पाठ यदि यथार्थ स्वर और वर्ण से हीन हो तो मिथ्या–प्रयुक्त होने के कारण वह अभीष्ट अर्थ का बोध नहीं करवाता। इतना ही नहीं वह वाक्रूपी वज्र बनकर यजमान के लिए अनिष्टकारक बन जाता है। यथा– 'इन्द्रशत्रुः' पद स्वर भेदजनित अपराध के कारण यजमान के लिए अनिष्टकारी हो गया। पाणिनीय शिक्षा के संदर्भ में प्राप्त शिक्षा और नैतिकता के विषय में विस्तृत विवेचन शोध–पत्र में किया जाएगा।

119

मिलिन्दपञ्ह में वर्णित शिक्षा–व्यवस्था के वैदिक स्वरूप का विश्लेषण

श्री विकास सिंह

शोधार्थी, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रस्तुत शोध–पत्र में पालि ग्रन्थ मिलिन्दपञ्ह के माध्यम से वैदिक शिक्षा–व्यवस्था के स्वरूप को जानने का प्रयास किया जायेगा। यह शोध–पत्र बौद्ध दृष्टि से वैदिक शिक्षा–व्यवस्था का मूल्यांकन करने के क्षेत्र में प्रयास मात्र है। मिलिन्दपञ्ह के विभिन्न सन्दर्भों से वैदिक शिक्षा–व्यवस्था के बारें में जानकारी प्राप्त होती है। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में शिक्षा–व्यवस्था का स्वरूप वर्णानुसार हो गया था। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों वेदों के साथ ही आयुर्वेद, इतिहास, पुराणादि को ब्राह्मण बालकों को पढ़ाया जाता था। युद्ध संचालन के साथ ही वेदों की शिक्षा क्षत्रियों को भी दी जाती थी। स्वयं राजा मिलिन्द उन्नीस विद्याओं के ज्ञाता थे, जिनमें श्रुति सर्वप्रथम है। नागसेन भी भिक्षु बनने से पहले तीनों वेदों को तीन आवृत्तियों में सीख गया था। वेद पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही था। स्वतन्त्र रूप से घरों में भी ब्राह्मण लोग शिक्षा देते थे। मिलिन्दपञ्ह में शैल नामक ब्राह्मण के तीन सौ छात्रों का उल्लेख मिलता है। वैश्यों तथा शूद्रों को वेदों की शिक्षा दी जाती थी अथवा नहीं, इसके सन्दर्भ मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात नहीं होते। शिल्पों की महत्ता तथा विकसित स्वरूप को देखने पर लगता है कि शायद शिल्प के बारे में व्यावसायिक शिक्षा दी जाती होगी। मिलिन्दपञ्ह में बताया गया है कि योग्य आचार्य के गुणों को शिष्य के द्वारा अपनाना चाहिए। शिष्य के प्रति आचार्य के पच्चीस कर्त्तव्यों को गिनाया गया है।

120

अनैतिकता की जन्मदात्री आधुनिक शिक्षा–पद्धति

श्री विश्वजीत विद्यालङ्कार

शोध–छात्र, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किसी स्थिर एवं सार्वकालिक शिक्षा–पद्धति अथवा पाठ्यक्रम की कल्पना नहीं की जा सकती। जैसे–जैसे समाज की आवश्यकताएँ बदलती हैं, सामाजिक परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं, वैसे–वैसे

शिक्षा–प्रणाली में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। वैदिक–काल से अब तक अपेक्षानुरूप भारतीय शिक्षा–पद्धति में भी निरन्तर परिवर्तन किया जाता रहा है। वैदिककालीन शिक्षा प्रारम्भ ही होती सामूहिक सद्भावना से *'सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्वीनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै'* (तैत्तिरीयोपनिषद 2.1) ।

आधुनिक शिक्षा–पद्धति से शिक्षित वर्ग में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों के प्रति यह वर्ग उदासीन हो रहा है। शिक्षित व्यक्ति अनैतिक होते हुए भी नैतिकता का सफलतापूर्वक ढोंग करता है। शिक्षा का मुख्य ध्येय है–'बी स्मार्ट'। जबकि वैदिक शिक्षा का मूल उद्देश्य था– *'वेदमनूच्याऽचार्योऽन्तवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव।'*– (तैत्तिरीयोपनिषद् एकादशोऽनुवाकः)। वैदिक शिक्षा–पद्धति सर्वोत्तम थी, यह उद्घोष करना शोध पत्र का न तो उद्देश्य है और न ही आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उपयुक्त होगा। किन्तु समाज में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा प्रादेशिक स्तर पर पनपती सङ्कीर्ण मानसिकता, शोषण, व्यभिचार, उन्माद आदि मानसिक व्याधियों का निदान वैदिक शिक्षा–पद्धति से ही सम्भव है।

❖--❖---❖

लखनऊ की याद

डॉ. शशि तिवारी

वह लखनवी अन्दाज़
तीतर–बाज के झगड़े।
वो नवाबी नजाकत
वो भारी भरकम लहंगे।।1।।

मेले–तमाशों की चहल
सुनती–सुनाती वो गलियां।
हर बात पे औरत की पहल
वो शानो शौकत की दुनियां।।2।।

चिकन के साफ पाजामे कुर्ते
कढ़ी साड़ियां, शर्मीले बुर्के।
आकाश तक ऊँचे चढ़ते
ग्लाइडर से कन्कऊए उड़ते।।3।।

गर्मियों में बिकती, तर
वो लैला कि अंगुलियां
पान तम्बाखू की तेज महक,
ओ खूबसूरत गिलोरियां।।4।।

अमीनाबाद की वो बाजारे,
वर्क चढ़ी गरम जलेबियां।
आम–खरबूजे की बहारें,
केवड़ से महकती रेवड़ियां।।5।।

हर शाम पे आबाद,
वो गोमती के किनारे।
किश्तियों से लम्बी सैर,
हरियाले बगीचों के नजारे।।6।।

रेजीडेन्सी के जिन्दा खण्डहर
भूलभुलइया वो इमामबाड़े की,
बारादरी की बारीकियां
सवारी ईक्के–तांगे की।।7।।

हर शेर पर 'क्या बात है?'
'वाह वाह' के वो नारे।
शेरो–शायरी के दीवाने
वो सूरज, चांद, सितारे।।8।।

जोशीले कव्वालों के आलाप
मर्मस्पर्शी सुरबंधी गज़लें।
तबले पर हाथों की थिरकन
वो कत्थक, पोशाक ओ गहने।।9।।

सब याद है जैसे अभी
कल ही की बात है।
बचपन में रटे पाठ सी
दिमागी आइने पे साफ है।।10।।

WAVES - Governing Council

Website- www.waves-india.com

PRESIDENT:
Prof. Ram Karan Sharma
(Former Vice Chancellor of Varanasi& Darbhanga Sanskrit Universities

VICE-PRESIDENT:
Prof. Lallan Prasad
(Former Prof. of Business Economics, Delhi University) Noida

TREASURER:
Dr. (Mrs.) Sushma Choudhary
(Lecture in Sanskrit, Dept. of Sanskrit, KNC, University of Delhi)

GENERAL SECRETARY:
Dr. (Mrs.) Shashi Tiwari
(Former Asso Prof. -Sanskrit, University of Delhi),
54 Saakshara Apartments,
A-3 Paschim Vihar, New Delhi-63
011-2526-5237(R), 0981.069.0322 (M),shashit_98@yahoo.com

PUBLIC RELATIONS:
Mr. Y.K. Wadhwa
(Former Business Executive, New Delhi)

JOINT SECRETARIES

Dr. Aparna Dhir, Dhir.aparna@gmail.com; **Dr. Umesh K. Singh**, umeshvedic@gmail.com

MEMBERS on BOARD

1. **Shri Prashant Bharadwaj** (Principal Consultant, IT Vision360, Gurgaon, Haryana)
2. **Dr. (Mrs.) Dharma** (Former Asso. Prof. of Sanskrit, Laxmibai College, Delhi Uni.)
3. **Dr. (Mrs.) Savita Gaur** (Former Prof. Gujarat University, Surat)
4. **Shri H. L. Kohli** (Former Director, Delhi Administration, CAD, Delhi)
5. **Shri Subodh Kumar** (Industrialist and Scientist, Ghaziabad, UP)
6. **Shri Dinesh Misra** (Former Director, Bhartiya Jnanpeeth, Noida)
7. **Dr. (Mrs.) Asha Lata Pandey** (HoD, Sanskrit, Delhi Public School, Delhi)
8. **Prof. V. Kutumba Sastry** (Former.V-C, Rashtriya Sanskrit Sansthan)
9. **Prof. Bhu Dev Sharma** (Former Professor , Clarks Atlanta University, Atlanta, USA)
10. **Dr. Ganesh Dutt Sharma**(Former Principal, LP College, Sahibabad)
11. **Prof. Radha Vallabh Tripathi** (V-C, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Delhi)
12. **Prof.Yamani BhushanTripathi** (Prof. of Medicinal Chemistry, B H U, Varanasi)
13. **Dr. (Mrs.) Vedawati Vaidik** (Associate Prof., Sanskrit, SAC,Delhi University)
14. **Shri Vidya Sagar Verma** (Former Ambassador of India, New Delhi)

Publications of WAVES

[Publisher: Pratibha Prakashan, 7259/20, Ajendra Market, Premnagar, Shakti Nagar, Delhi-110007]

1. CONTEMPORARY WORLD ORDER: A VEDIC PERSPECTIVE
(Ancient Indian Literary Heritage-I) (Proceedings of the 7th India Conference held at Pondicherry)
Editior : Dr. Shashi Tiwari, **Sub-Editor:** Dr. Alka B. Bakre; **Edition** : 2009, **PRICE :** Rs.1,500/-

2. HARAPPAN CIVILIZATION AND VEDIC CULTURE
(Ancient Indian Literary Heritage-II) (Proceedings of the 12th India Conference held at Delhi)
Editior : Dr. Shashi Tiwari, **Edition** : 2010 , **PRICE** : Rs.1,200/-

3. CREATION AND EXISTENCE IN INDIAN TRADITION (In English and Sanskrit)
(Ancient Indian Literary Heritage-III vol)(Proceedings of the 13th India Conference held at Delhi)
Editor : Dr. Shashi Tiwari, **Edition :** 2011, **PRICE :** Rs.995/-

4. BHARTIYA PARAMPARA ME SRISTI AVAM STHITI (In Hindi)
(Ancient Indian Literary Heritage-IV vol)(Proceedings of the 13th India Conference held at Delhi)
Editor : Dr. Shashi Tiwari, **Edition :** 2011,**PRICE :** Rs.1250/-